शुष्क क्षेत्र में जलवायु समुत्थानशील कृषि तकनीकियाँ

जलवायु समुत्थानशील कृषि पर राष्ट्रीय पहल परियोजना
(NICRA-TDC)

सुशील कुमार शर्मा, पूनम कालश, धर्म वीर सिंह, निशा पटेल एवं राजेश कुमार गोयल

भाकृअनुप
ICAR

NICRA

कृषि विज्ञान केन्द्र

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

जोधपुर (राजस्थान)

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
CENTRAL ARID ZONE RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

कृषि विज्ञान केन्द्र
भा. कृ. अनु. प. - केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
जोधपुर
जलवायु समुत्थानशील से कृषि पर
राष्ट्रीय पहल परियोजना
फसल : जीरा
किस्म : जी.सी. -4

शुष्क क्षेत्र में जलवायु समुत्थानशील कृषि तकनीकियाँ

जलवायु समुत्थानशील कृषि पर राष्ट्रीय पहल परियोजना
(NICRA-TDC)

सुशील कुमार शर्मा, पूनम कालश, धर्म वीर सिंह
निशा पटेल एवं राजेश कुमार गोयल

भाकृअनुप
ICAR

NICRA

कृषि विज्ञान केन्द्र
भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
जोधपुर (राजस्थान)

मार्गदर्शन

डॉ. ओम प्रकाश यादव
निदेशक, काजरी, जोधपुर

परियोजना अन्वेषक

डॉ. सुशील कुमार शर्मा
अध्यक्ष व वरिष्ठ वैज्ञानिक
कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, जोधपुर

विशिष्ठ सहयोग

रेवतराम मेघवाल
डॉ. हरीदयाल
डॉ. अशोक सिंह तोमर
डॉ. सुभाष चन्द्र कच्छावाह
ममता मीणा
श्री बल्लभ शर्मा
डॉ. रामपाल सिंह
सविता सिंघल
प्रद्युमन सिंह भाटी
कुसुम लता
मनीष चौधरी
राजेन्द्र पटेल

सम्पादन समिति : निशा पटेल, धर्म वीर सिंह, प्रताप चन्द्र महाराणा, नव रतन पंवार, प्रियब्रत सांतरा, राजवन्त कौर कालिया, राजेश कुमार गोयल एवं राकेश पाठक

संदर्भ : सुशील कुमार शर्मा, पूनम कालश, धर्म वीर सिंह, निशा पटेल एवं राजेश कुमार गोयल, 2017। शुष्क क्षेत्र में जलवायु समुत्थानशील कृषि तकनीकियाँ, कृषि विज्ञान केन्द्र, केन्दीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान), 102 पृ.

परियोजना

निकरा –टीडीसी कृषि विज्ञान केन्द्र
भा.कृ.अनु.प. – केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

मार्च– 2017

डीटीपी

मनीष चौधरी

मुद्रक

एवरग्रीन प्रिण्टर्स, जोधपुर 9414128647

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर - 342 003 (राजस्थान), भारत

डॉ. ओम प्रकाश यादव
निदेशक

संदेश

पश्चिमी राजस्थान के मरूस्थलीय संभाग में वर्षा की अनिश्चितता के कारण फसलों के उत्पादन में हमेशा जोखिम बना रहता है। इस क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में वर्षा न होना, बीच–बीच में सूखे की स्थिति बनना तथा समय से पूर्व मानसून का विदा होने के कारण फसल उत्पादन कम होता है। ये सभी प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण व कम उत्पादकता के प्रमुख कारक है। जिससे खेती अधिक जोखिमपूर्ण हो गयी है। शुष्क भूमि क्षेत्रों में स्थाई कृषि उत्पादकता, प्राकृतिक संसधानों की गुणवत्ता बनाए रखना एवं वर्षा जल उपयोग क्षमता की वृद्धि, स्थान विशिष्ट प्रौद्योगिकियों और जोखिम न्यूनीकरण के माध्यम से संभव है।

जलवायु परिवर्तन का असर भारत ही नहीं पूरे विश्व में पड़ रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि उत्पादन, पशुपालन एवं कृषि से सम्बन्ध इकाईयों पर पड़ रहा है, अप्रत्यक्ष रूप से इसका प्रभाव खेती एवं पशुपालन से होने वाली शुद्ध आय में कमी के रूप में सामने आ रहा है। शुष्क भूमि की क्षमताओं का पूर्ण लाभ फसल, पशुधन एवं बागवानी, आधारित खेती प्रणाली के कुशल प्रबंधन से लिया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिये ऐसे कार्यों की आवश्यकता है जिनसे तापमान वृद्धि के कुप्रभावों को कम किया जा सके। इन तथ्यों को मद्देनजर रखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के केन्द्रीय शुष्क कृषि अनुसंधान संस्थान हैदराबाद द्वारा सतत् अनुसंधान के आधार पर एक राष्ट्रीय स्तर की परियोजना तैयार की गयी जिसे ''जलवायु समुत्थानशील कृषि में राष्ट्रीय नवाचार'' के नाम से जाना जाता है।

यह परियोजना प्रायोगिक शोध के तौर पर वर्ष 2010–2011 में देश के 100 कृषि विज्ञान केन्द्रों तथा कृषि अनुसंधान व अन्य कृषि संस्थानों पर चलाई जा रही है। राजस्थान में यह परियोजना जोधपुर, कोटा, झुन्झुनु, भरतपुर एवं बाड़मेर द्वारा चलाई जा रही है। कृषि विज्ञान केन्द्र, जोधपुर द्वारा इस परियोजना के क्रियान्वयन हेतु पुरखावास व लुणावास खारा पंचायत समिति लूणी गांवों का चयन वर्ष 2011 में किया गया है। सूखा एवं अनियमित वर्षा इन गांवों की मुख्य समस्या है। केन्द्र के द्वारा इन गांवों में प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन, कम समय में पकने वाली फसलों के उन्नत बीज, फलदार पौधे, पशु प्रबन्धन, शुल्क आधारित कृषि यंत्रों की उपलब्धता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। इस पुस्तक में जलवायु परिवर्तन के कुप्रभावों को कम करने के लिए काजरी द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकियों को सरल भाषा में संकलित किया गया है, जिससे किसान लाभान्वित होंगे। इस पुस्तक के सभी लेखकों को मैं बधाई देता हूँ।

(ओम प्रकाश यादव)

भाकृअनुप
ICAR

डॉ. सुशील कुमार सिंह
निदेशक

Dr. Sushil Kumar Singh
Director

भाकृअनुप-कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान
(काजरी परिसर) जोधपुर - 342 005 (राज.)
ICAR-Agricultural Technology Application Research Institute
(CAZRI Campus) **Jodhpur - 342 005 (Raj.)**
(ISO 9001:2015)
Phone: +91-291-2740516, 2748412 **FAX:** +91-291-2744367
E-mail: zpd6jodhpur@gmail.com, **Website:** www.atarijodhpur.res.in

संदेश

राजस्थान एक विकट परिस्थितिजन्य राज्य है। कम व अनियमित वर्षा, उच्च व निम्न तापमान, रेत के टीले व दूर–दूर छितराया वनस्पति क्षेत्र, यही इस मरूक्षेत्र की तस्वीर है। इन विषम परिस्थितियों में उपलबध संसाधनों का सर्वाधिक उचित उपयोग कर अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना भी एक चुनौती से कम नहीं है। यही कारण है कि इस प्रदेश के वासी खेतीबाड़ी, पशुपालन, चारा संरक्षण, वृक्ष व जल संरक्षण की अपनी अद्‌भुत पारम्परिक तकनीकों को अपनाकर विकट से विकट अकालजन्य परिस्थितियों का जीवट से मुकाबला करते हैं।

कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, जोधपुर ने पिछले चार दशक से भी अधिक समय से कृषि, बागवानी एवं पशुधन का उत्पादन बढ़ाने, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण व सदुपयोग तथा कृषक महिलाओं एवं ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार मुखी प्रशिक्षण व प्रदर्शन देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रस्तुत पुस्तक "शुष्क समुत्थानशील कृषि तकनीकियाँ" भी कृषि विज्ञान केन्द्र, जोधपुर द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के केन्द्रीय शुष्क कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा प्रदत "जलवायु समुत्थानशील कृषि में राष्ट्रीय नवाचार" परियोजना के अन्तर्गत जोधपुर जिले के ग्राम लूणावास व पुरखावास में वर्ष 2011 से लगातार किये गये विभिन्न कृषक भागीदारी तकनीकी निर्धारण व परिर्माजन प्रशिक्षण, प्रदर्शन आदि का संकलन कर विशेषज्ञों के लेखों को प्रस्तुत किया है।

इस पुस्तक में लेखकों द्वारा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, फसलोत्पादन बागवानी, समन्वित कृषि प्रणाली, जैविक खेती, कीट व रोगों का प्रबन्धन, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण,

पशुपालन एवं सूचना प्रौद्योगिकी का कृषि क्षेत्र में उपयोग तथा सौर ऊर्जा व मूल्य संवर्धन आदि शुष्क क्षेत्र से संबंधित सभी विषयों को शामिल करने का प्रयास किया गया है।

मै इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, जोधपुर के सभी अधिकारियों व कर्मचारियों को बधाई देता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक शुष्क क्षेत्र के अनुसंधानकर्त्ताओं, प्रसार कार्यकर्त्ताओं, स्वयं सेवी संगठनों, किसानों व छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

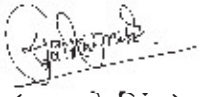

(एस.के. सिंह)

प्रस्तावना

भारतीय कृषि को ''मानसून का जुआ'' कहा जाता है। राजस्थान के परिपेक्ष में यह बात शत प्रतिशत सही है। राजस्थान में वर्षा की अल्पता तथा असामयिकता के कारण बार–बार अकाल पड़ते रहते हैं। आधुनिक समय में जब कृषि एक व्यवसाय के रूप में बेहद खर्चीली होती जा रही है, ऐसे समय में यदि जलवायु परिवर्तन एवं अकाल का लगातार सामना करना है तो कृषक समुदाय को बेहद चतुराई एवं पर्याप्त ज्ञान की आवश्यकता होगी। सम्पूर्ण विश्व में जलवायु परिवर्तन को लेकर जो चिंता व्यक्त की जा रही है एवं उसका समाधान ढूंढने के प्रयास किये जा रहे हैं, उनसे हमारे राज्य का मरू एवं शुष्क क्षेत्र भी अछूता नहीं है हमारा मजबूत पक्ष कृषि क्षेत्र में विविधीकरण है जो इस क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। इसी जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को तथ्यगत रखते हुए भाकृअनुप– केन्द्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (ICAR-CRIDA) द्वारा वर्ष 2011 में देशभर के 100 कृषि विज्ञान केन्द्रों पर जलवायु समुत्थानशील कृषि पर राष्ट्रीय पहल परियोजना (NICRA-TDC) प्रारम्भ की गई थी। परियोजना को अन्तर्गत कृषि विज्ञान केन्द्र काजरी, जोधपुर द्वारा गोद लिए गये ग्रामों में किये गये विभिन्न प्रदर्शनों, प्रक्षेत्र परीक्षणों एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों में जो तकनीक किसानों के हित में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का कम करने के प्रभावी हो सकती है उन्हीं कुछ तकनीकियों को प्रस्तुत पुस्तक "शुष्क क्षेत्र में जलवायु समुत्थानशील कृषि तकनीकियाँ" में एकत्रित करने का प्रयास किया गया है। इसमें शुष्क क्षेत्र से सम्बधित जैसे मृदा एवं जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रबंधन, शुष्क क्षेत्र में फसलोत्पादन, बागवानी, कीट एवं रोग प्रबंधन, पशुधन प्रबंधन एवं साथ ही महिला कृषकों हेतु नवीनतम तकनीकी को शामिल करने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक के प्रकाशन के दौरान मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन के लिए हम डॉ. ओ.पी. यादव, निदेशक, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर के अत्यन्त आभारी है। इसके साथ ही हम भाकृअनुप–केन्द्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (ICAR-CRIDA), हैदराबाद व डॉ. एस.के. सिंह निदेशक, भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान (ICAR-ATARI), काजरी परिसर, जोधपुर जोन VI व जलवायु समुत्थानशील कृषि पर राष्ट्रीय पहल परियोजना के नोडल अधिकारी डॉ. पी.पी. रोहिल्ला का भी विशेष आभार व्यक्त करते हैं। हम कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, जोधपुर के समस्त कर्मचारियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिनकी सामुहिक

कर्त्यनिष्ठा से इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हुआ। हम श्री मनीष चौधरी, वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता द्वारा पुस्तक का टंकण करने के लिए कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। सम्पादकीय सहायता के लिए हम संस्थान की संपादन समिति के अध्यक्ष एवं सदस्यों के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। जिन्होंने पुस्तक के संकलन के समय बहुमूल्य सुझाव दिये। हम विशेष रूप से आभारी हैं उन सभी वैज्ञानिकों का जिन्होंने अपने–अपने विषय के सर्वोत्तम साहित्य इस पुस्तक के संकलन हेतु हमें उपलब्ध करायें।

लेखकगण

विषय सूची

क्र.सं.	व्याख्यान	पृष्ठ सं.
1.	**कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव** हरि मोहन मीणा	1
2.	**भारतीय उष्ण मरुस्थल में वैश्विक तापमान वृद्धि का जल संसाधनों पर प्रभाव** राजेश कुमार गोयल एवं रंजय कुमार सिंह	4
3.	**मृदा एवं जल परीक्षण** एस.के. शर्मा	10
4.	**खरीफ में दलहन उत्पादन तकनीक** आर.एन. कुमावत एवं आर.आर. मेघवाल	16
5.	**खरीफ में बाजरा उत्पादन तकनीक** नन्द किशोर जाट एवं भगवान सिंह	20
6.	**रबी तिलहन की उन्नत खेती** आर.आर. मेघवाल, ए.एस. तोमर एवं मनीष चौधरी	25
7.	**शुष्क क्षेत्रों में देशी बेर के पौधों से उन्नत किस्म के फल** हरिदयाल, पी.एस. भाटी एवं एस.के. शर्मा	29
8.	**कुमट एक गोंद उत्पादक वृक्ष** आर.पी. सिंह, एस.के. शर्मा एवं मनीष चौधरी	32
9.	**कम्पोस्ट खाद का महत्व व बनाने की तकनीक** आर.पी. सिंह एवं मनीष चौधरी	35
10.	**शुष्क क्षेत्र में जैविक कृषि** अरुण कुमार शर्मा	38

11. **दलहनी व तिलहनी फसलों में पौध संरक्षण** 40
ऋतु मावर, ए.एस. तोमर, आर.के. भट्ट एवं एस.के. शर्मा

12. **फसलों में दीमक का समन्वित प्रबंधन** 49
ए.एस. तोमर, आर.एस. त्रिपाठी, एस.के. शर्मा
आर.आर. मेघवाल एवं मनीष चौधरी

13. **फसलों, घरों व गोदामों में चूहा नियंत्रण** 52
आर.एस. त्रिपाठी, विपिन चौधरी एवं ए.एस. तोमर

14. **पारम्परिक विधियों द्वारा घरेलू स्तर पर सुरक्षित अनाज भण्डारण** 56
पूनम कालश एवं सविता सिंघल

15. **शुष्क क्षेत्र में औषधीय पौधों की खेती एवं उपयोग** 62
ममता मीणा एवं मनीष चौधरी

16. **शुष्क क्षेत्रों में पशुधन उत्पादन एवं प्रबन्धन** 68
अरुण कुमार मिश्रा

17. **अज़ोला - मरु क्षेत्र में नई आशा** 75
सुभाष कच्छावाह, सुशील कुमार शर्मा, अरुण कुमार मिश्रा
एवं बसन्त कुमार माथुर

18. **सूचना-प्रौद्योगिकी की कृषि के क्षेत्र में उपयोगिता एवं अनुप्रयोग** 79
कुसुम लता, पूनम कालश, मनीष चौधरी एवं एस.के. शर्मा

19. **दूध एवं दूध उत्पादों का मूल्य संवर्द्धन** 89
सविता सिंघल, पूनम कालश एवं एस.के. शर्मा

20. **शुष्क क्षेत्र में सौर ऊर्जा से चलने वाले उपयोगी यन्त्र** 92
दिलीप जैन एवं सुरेन्द्र पूनिया

21. **फसलों में सूत्रकृमि समस्या एवं प्रबन्धन** 101
आर.के. कौल, ए.एस. तोमर एवं एस.के. शर्मा

कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

हरि मोहन मीणा
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

परिचय

मौसम विशेषज्ञों का मानना है कि पिछले 150 से 200 वर्षों में जलवायु परिवर्तन इतनी तेजी से हुआ कि प्राणी और वनस्पति जगत को इस परिवर्तन के साथ सामंजस्य करने में परेशानी हो रही है। तेजी से औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, सघन कृषि, जीवाश्म, वनों की कटाई, उर्वरक और जनसंख्या आदि जलवायु परिवर्तन में सक्रिय कारक हैं। जिनमें ग्रीन हाउस गैसों की मुख्य भूमिका है। हरित गृह प्रभाव और वैश्विक तापमान वृद्धि को मानव क्रिया कलाप का परिणाम माना जा रहा है, जो कि औद्योगिक क्रान्ति के बाद मानव द्वारा विभिन्न उद्योगों से निष्कासित कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा के वायुमण्डल में बढ़ने से हैं। मिथेन और नाइट्रस ऑक्साइड की सान्द्रता में वृद्धि के लिए कृषि भी जिम्मेदार है जैसे नाईट्रोजन उर्वरक मृदा में डालने के बाद वर्षा या सिंचाई से नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन होती है, चावल की खेती ओर पशुओं की आंतो में किण्वन प्रक्रिया से मिथेन उत्सर्जित होती है। वायु मंडण्ल में कार्बनडाईऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड की सान्द्रता में वृद्धि हो रही है। हरित गृह प्रभाव वह प्रक्रिया जिसमें पृथ्वी से टकराकर लौटने वाली सूर्य की किरणों को वातावरण में उपस्थित कुछ गैसें अवशोषित कर लेती है जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती है। तापमान बढ़ने के कारण जलवायु परिवर्तन हो रहा है, और जिसके कारण मौसम की चरम–घटनाओं में बढ़ोत्तरी हो रही है और परिणामस्वरूप कृषि और पशुधन को इसकी मार झेलनी पड़ रही है। जम्मू–कश्मीर में 2014 में दो बार बाढ़ का आना और 2015 में राजस्थान में ओलावृष्टि से फसल की तबाही होना। मौसम शोधकर्त्ताओं ने पाया है कि जलवायु ओर मौसम की चरम घटनाओं में बदलाव आया है और इससे कृषि उत्पादन प्रभावित हो रहा है। बढ़ती विश्व और राष्ट्रीय जनसंख्या को देखते हुऐ कृषि को टिकाऊ बनाए रखने के लिए जलवायु परिवर्तन और कृषि के बीच सामंजस्य बनाए रखना जरूरी है।

जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन औसत मौसमी दशाओं के स्वरूप में ऐतिहासिक रुप से बदलाव है। इस परिवर्तन में बहुत वर्ष लगते हैं। अंर्तराष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन पैनल (आइपीपीसी, 2014) के अनुसार पिछले 130 वर्षों (1880–2012) में वैश्विक औसतन संयुक्त भूमि और समुद्र सतह के तापमान में 0.85 डिग्री सेल्सियस (0.65–1.05 डिग्री सेल्सियस) की बढ़ोत्तरी हुई है और वैश्विक औसत समुद्र सतह में 0.19 मी. (0.17–0.21 मी) की वृद्धि हुई है। वर्ष 2013 के एक अध्ययन में राज्यों के 1951–2010 के औसत

आंकडों के आधार पर बताया कि भारत के छत्तीसगढ, हरियाणा, जम्मू–कश्मीर, मेघालय, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड और पश्चिमी बंगाल को छोडकर सभी राज्यों में वार्षिक औसत तापमान में काफी वृद्धि हुई है। वार्षिक औसत तापमान में सबसे अधिक वृद्धि सिक्किम में 0.05 डिग्री सेल्सियस प्रति वर्ष, मणिपुर में 0.03 डिग्री सेल्सियस प्रति वर्ष तथा गोवा, हिमाचल प्रदेश और तामिलनाडु में 0.02 डिग्री सेल्सियस प्रति वर्ष, चित्र (1) हुई है। पंजाब राज्य में औसत तापमान –0.01 डिग्री सेल्सियस प्रति वर्ष, घटी हैं जबकि छत्तीसगढ, हरियाणा, मेघालय, उडीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल राज्यों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वार्षिक वर्षा में आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, हरियाणा, जम्मू–कश्मीर, झारखण्ड, लक्षद्वीप, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, त्रिपुरा और पश्चिमी बंगाल राज्यों में वृद्धि हुई है (चित्र 1) जबकि अंडमान और निकोबार, अरुणाचल प्रदेश, असम, छत्तीसगढ, दिल्ली, गोवा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, नागालैण्ड, पंजाब, सिक्किम और उत्तर प्रदेश में कमी आयी है। वार्षिक वर्षा में सबसे अधिक वृद्धि मेघालय में 14.68 मिमी./वर्ष और कमी अण्डमान निकोबार में –7.77 मिमी./वर्ष में देखी गई है। थार मरूस्थल में हुए एक अध्ययन में बताया गया है कि दिन और रात का तापमान क्रमशः 0.036 डिग्री सेल्सियस और 0.021 डिग्री सेल्सियस प्रति वर्ष बढ़ा है।

कृषि पर प्रभाव

विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों में पाया गया है कि जलवायु परिवर्तन से अधिक प्रभावित होने वाला क्षेत्र कृषि ही है क्योंकि में फसल की बुवाई से लेकर कटाई तक मौसम और जलवायु पर निर्भर रहती है इसी

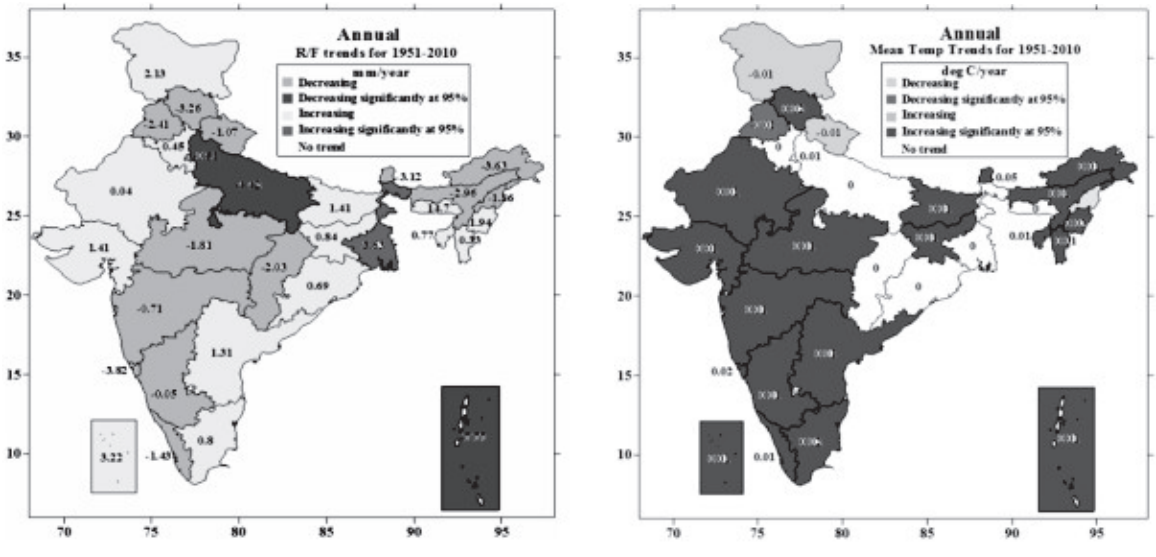

चित्र-1 राज्य स्तर पर वार्षिक औसत वर्षा की औसत प्रवृत्तियां, स्रोत राठौर आदि (2013)

दौरान सूखे, बाढ़, ओलावृष्टि, पाला आदि की मार भी झेलनी पड़ती है। फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीट एवं रोग भी अप्रत्यक्ष रूप से मौसम और जलवायु परिवर्तन से प्रभावित करते हैं। इसलिए जलवायु परिवर्तन से कृषि उत्पादन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। वायुमण्डल में कार्बनडाईऑक्साइड की वृद्धि कुछ फसलों जेसे सोयाबीन, मूंगफली, नारियल और आलू के लिए अच्छी भी हो सकती है क्योंकि यह प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया को बढ़ाने में सहायक है लेकिन मौसम की चरम घटनाओं जैसे बाढ़, सूखा, तूफान, ओलावृष्टि, पाला गर्म और ठण्डी हवा तथा हवा की आवृति में वृद्धि से भी कृषि प्रभावित हो सकती है। मौसम बदलने से फसल में रोग और व्याधियों पर भी असर होता है जो कि कृषि उत्पादन को व्यापक स्तर पर प्रभावित कर सकता है। जलवायु परिवर्तन फसल के जीवन चक्र और उसकी गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है। एक अध्ययन में ये पाया गया कि तापमान में वृद्धि होने से चावल और गेहूँ के जीवन चक्र की अवधि में कमी आयी है। औसत तापमान 0.5 डिग्री सेल्सियस बढ़ने पर गेहूं की फसल अवधि में 7 दिनों की कमी और 0.45 टन प्रति हेक्टेयर उपज कम होने सम्भावना जताई गई है। जलवायु परिवर्तन के कारण फसलों की जल मांग भी प्रभावित होगी जिससे फसलों हेतु सिंचाई की जरूरत बढ़ सकती है जिससे सबसे ज्यादा प्रभाव जल संसाधनों पर पड़ेगा।

भारतीय उष्ण मरूस्थल में वैश्विक तापमान वृद्धि का जल संसाधनों पर प्रभाव

राजेश कुमार गोयल एवं रंजय कुमार सिंह
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

परिचय

संसार भर के वैज्ञानिक अब इस बात से सहमत हैं कि पृथ्वी के तापमान में बढ़ोत्तरी हो रही है और इस तथ्य को साबित करने के लिये उनके पास पर्याप्त सबूत हैं कि वर्ष 1880 की तुलना में पृथ्वी के तापमान में लगभग 0.5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है। विश्व के तापमान में निरन्तर वृद्धि का मुख्य कारण धरती के वायुमण्डल में कुछ विशेष गैसों की मात्रा का बढ़ जाना है जिससे धरती के वातावरण से गर्मी बाहर कम जा पाती है। इन गैसों में प्रमुख हैं कार्बनडाईऑक्साइड, जल वाष्प, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड। इन गैसों की मात्रा वायुमण्डल में बढ़ने के कारण होने वाली तापमान वृद्धि को ग्रीन हाउस प्रभाव के नाम से जाना जाता है जो वैश्विक जलवायु को प्रभावित कर रहा है।

जलवायु परिवर्तन का सबसे सुनिश्चित असर तापमान में वृद्धि व इसके फलस्वरुप वाष्पन द्वारा जल हानि में बढ़ोत्तरी व अन्ततः अधिक कुल जल आवश्यकता होगी। वैश्विक स्तर पर तापमान में 2 से 5 डिग्री सेल्सियस बढ़ोत्तरी से वाष्पोत्सर्जन में 5 से 10 प्रतिशत बढ़ोत्तरी की संभावना व्यक्त की जा रही है। राजस्थान जैसे शुष्क राज्य में जल मांग में थोड़ी भी बढ़ोत्तरी अकाल व सूखे की स्थिति पैदा कर सकती है, फलस्वरुप स्थानीय व वैश्विक स्तर पर कृषि उत्पादन पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका है। जलवायु परिवर्तन व इससे पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभावों से बचने के लिये एक गहन व समग्र योजना की आवश्यकता है। एक तरफ हमें वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों के अत्यधिक उत्सर्जन को नियंत्रित करना होगा, वहीं दूसरी ओर हमें जल संसाधनों के मितव्ययी प्रयोग की तकनीकों का विकास करना होगा।

प्रस्तावना

धरती का तापमान दिनों–दिन बढ़ता ही जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार बढ़ती गर्मी के कारण 2020 तक धरती से कई जीव–जंतु और पेड़–पौधों का अस्तित्व मिट जाएगा। वैज्ञानिकों का मानना है कि वैश्विक तापमान वृद्धि के कारण जीव–जंतुओं की कई प्रजातियाँ खत्म हो जाएंगी। विक्टोरिया यूनिवर्सिटी के पर्यावरण विज्ञानी एंड्रयू वीवर ने बताया है की दुनिया को एक साथ अकाल और बाढ़ दोनों का सामना करना पड़ेगा। इसके अलावा मानव जाति को पीने के पानी और भोजन की कमी से भी जूझना पड़ सकता है। यह महाविनाश की राह है। इस बारे में एक रिपोर्ट बेल्जियम में 120 देशों के

प्रतिनिधियों के सामने पेश की गयी है। यह रिपोर्ट दुनिया भर में संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी की जाने वाले पर्यावरण पर चार रिपोर्टों की श्रृंखला की दूसरी कड़ी है। रिपोर्ट के मसौदे में कहा गया है कि बढ़ती गर्मी के कारण कई प्रजातियों पर खतरे के बादल मंडरा रहे हैं।

वैश्विक तापमान में वृद्धि से पड़ने वाले दूरगामी प्रभाव की चर्चा यूं तो कई दशकों से की जा रही है, लेकिन अब वास्तव में इसका असर दिखने लगा है जिसके तहत चीन में पिछले तीन दशकों के दौरान क्विंगहाई तिब्बत पठार के आस–पास के क्षेत्र में रेगिस्तानी इलाकों में खासी बढ़ोत्तरी देखी गयी है।

पृथ्वी आपतित सौर ऊर्जा का लगभग दो–तिहाई भाग अवशोषित करती है। एक तिहाई भाग परावर्तित एवं प्रकीर्ण हो जाता है और कई जटिल क्रियाओं के माध्यम से ऊर्जा का आवागमन चलता रहता है और पृथ्वी का विकिरण संतुलन बना रहता है। बाहर जा रहे विकिरण का अधिकांश भाग जलवाष्प एवं कार्बनडाईऑक्साइड द्वारा पुनः अवशोषित हो जाता है; इन दोनों के संयुक्त प्रभाव के परिणामस्वरूप ग्रीन हाउस प्रभाव जन्म लेता है। पृथ्वी पर मौसम को संचालित करने में इस प्रभाव का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

वनों की कटाई एवं जीवाश्म ईंधन के दहन में वृद्धि के संयुक्त प्रभाव से कार्बनडाईऑक्साइड के वायुमण्डलीय सान्द्रण में वृद्धि होती है। वायुमण्डल में कार्बनडाईऑक्साइड की मात्रा सन् 1970 के बाद 30 प्रतिशत बढ़ी है जिसने ग्रीन हाउस प्रभाव में 65 प्रतिशत योगदान दिया है। इन्टर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आई.पी.सी.सी.) के वैज्ञानिकों के अनुसार वायुमण्डल में कार्बनडाईऑक्साईड की मात्रा बढ़ने से लगभग 100 वर्षों में धरती का औसत तापमान 1 से 3.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ने की प्रबल सम्भावना है। यह परिवर्तन अब तक हुए किसी भी प्राकृतिक परिवर्तन से कहीं अधिक विशाल एवं तीव्र होगा इसीलिए विनाशक भी होगा। ध्यान देने योग्य है की पिछली सदी में औसत तापमान में दर्ज की गई मात्र 0.3 से 0.6 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से ही खतरनाक नतीजे सामने आने लगे हैं। इस दौरान महासागरों का जल स्तर 10.25 सेमी ऊँचा हो गया है। इसमें 2.7 सेमी. की बढ़ोत्तरी बढ़े हुए तापमान के कारण पानी के फैलाव से हुई है। जबकि 2.5 सेमी. की वृद्धि के लिए ध्रुवों एवं पर्वतों की पिघलती बर्फ को जिम्मेदार पाया गया है। वैज्ञानिकों का अनुमान है की इस सदी के अंत तक महासागरों का जलस्तर 15 से 95 सेमी. तक ऊँचा हो सकता है। महासागरों का जलस्तर ऊँचा उठने से हिन्द महासागर, मध्यसागर, अटलांटिक महासागर, अफ्रीका, एवं कैरिबियन तट पर बसे अनेक नगरों व महानगरों के सागर में विलीन होने की प्रबल सम्भावना है।

वैश्विक तापमान वृद्धि, वाष्पोत्सर्जन व कृषि जल मांग में सम्बन्ध

तापमान में वृद्धि के कारण हवा के अन्दर वाष्प को धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है जो वाष्पोत्सर्जन का एक प्रमुख कारक है। संतृप्त वाष्प दबाव, तापमान में वृद्धि के साथ बढता है। यदि अन्य

जलवायु कारकों में कोई परिवर्तन न किया जाए तो संतृप्त वाष्प दबाव में वृद्धि से वाष्पोत्सर्जन बढ़ जायेगा। फसलों व वृक्षों की कुल जल मांग का केवल 1 प्रतिशत भाग ही वास्तव में फसलों व वृक्षों की बढ़वार में काम आता है, जबकि शेष 99 प्रतिशत भाग वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायुमंडल में चला जाता है।

वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल हानि पादपों की बढ़वार के लिये एक आवश्यक प्रक्रिया है। यदि पादपों की वाष्पोत्सर्जन मांग की पूर्ति न की जाय तो पौधे की बढ़वार रुक जायेगी व पौधा जल के अभाव में मर जायेगा। अतः सफल कृषि उत्पादन के लिये पादपों की वाष्पोत्सर्जन मांग की पूर्ति अति आवश्यक है। वाष्पोत्सर्जन मांग की पूर्ति में उपलब्ध कुल जल संसाधनों का 80 से 90 प्रतिशत भाग काम आता है अतः वैश्विक तापमान वृद्धि के कारण वाष्पोत्सर्जन मांग में कोई भी बढ़ोत्तरी हमारे जल संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है।

तालिका 1. राजस्थान की जल आवश्यकता का घटकवार पूर्वानुमान (बी सी एम)

घटक / वर्ष	2005	2015	2045
घरेलु	2.6 (6.5%)	3.2 (7.1%)	4.7 (8.2%)
पशुपालन	0.9 (2.2%)	1.1 (2.4%)	1.2 (2.3%)
सिंचाई	35.9 (89.5%)	40.0 (88.7%)	49.1 (86.0%)
अन्य	0.7 (1.7%)	0.8 (1.8%)	2.0 (3.5%)
कुल	40.1	45.1	57.1

अध्ययन के लिये प्रयुक्त तकनीक

वर्तमान में वाष्पोत्सर्जन ज्ञात करने के लिये बहुत से मॉडल उपलब्ध हैं। यह सभी मॉडल परिस्थिति व स्थान विशेष के लिये विकसित किये गये हैं। वर्तमान अध्ययन में खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा अनुशंसित पेनमेन मोनटेक मॉडल का प्रयोग किया गया है। वाष्पोत्सर्जन की औसत गणना करने के लिये दीर्घकालीन (वर्ष 1967 से 2006) मौसम विज्ञानीय प्राचलों का प्रयोग किया गया है। तत्पश्चात तापमान को 1 से 3 डिग्री सेल्सियस बढ़ाकर पुनः वाष्पोत्सर्जन की गणना की गयी है । मौसम विज्ञानीय जिलेवार शुष्क एवं सिंचित कृषि क्षेत्र के आंकडे एकत्र किये गये हैं, फसलवार जलमांग की गणनाएँ की गई है व वैश्विक तापमान वृद्धि के सन्दर्भ में भविष्य के लिये राजस्थान की जल आवश्यकता का पूर्वानुमान लगाया गया है जिसे तालिका 2 व 3 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 2 राजस्थान में जिलेवार कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल एवं भू-जल दोहन की स्थिति

जिलावार विवरण	कुल क्षेत्रफल (वर्ग किमी.)	कुल कृषि योग्य भूमि (वर्ग किमी.)	कुल सिंचित खेती (वर्ग किमी.)	वार्षिक भू जल उपलब्धता (एम.सी. एम.)	ताजा भू–जल दोहन स्थिति (एम.सी.एम.)	ताजा विदोहन स्तर (प्रतिशत)	वैश्विक तापमान वृद्धि के कारण दोहन/ विदोहन /अतिदोहन प्रभावित श्रेणियाँ			
							अभी तक	1%	2%	3%
अजमेर	8423	4233	949	314	349	111	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
अलवर	7829	7849	4568	912	1112	122	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
बांसवाड़ा	5065	2748	476	163	39	24	सु.	सु.	सु.	सु.
बाराँ	6997	4514	2317	495	321	65	सु.	वि	वि	वि
बाड़मेर	28173	16504	1505	250	256	102	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
भरतपुर	5071	5626	2741	514	480	93	अ वि	अ वि	अ वित	अ वित
भीलवाड़ा	10475	4096	1198	427	452	106	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
बीकानेर	30356	14653	2284	198	145	73	वि	अ वि	अ वित	अ वित
बूंदी	5819	3443	2015	356	231	65	सु.	वि	वि	अ वि
चित्तौड़गढ़	10357	4758	1083	460	519	113	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
चुरू	13859	11408	581	198	117	59	सु.	सु.	वि	वि
दौसा	3405	3150	1563	269	295	110	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
धौलपुर	3009	1587	549	237	246	104	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
डूँगरपुर	3856	1283	132	93	71	76	वि	वि	वि	वि
गंगानगर	10930	9068	7869	199	134	67	वि	अ वित	अ वित	अ वित
हनुमानगढ़	9703	8827	5499	195	165	85	वि	अ वित	अ वित	अ वित
जयपुर	11055	8150	4226	684	1016	148	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
जैसलमेर	38392	4674	907	53	40	75	वि	अ वि	अ वित	अ वित
जालोर	10566	7409	2022	424	827	195	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
झालावाड़	6322	4170	1240	398	381	96	अ वि	अ वि	अ वित	अ वित
झुंझुनूं	5917	6097	2426	243	420	173	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित

जोधपुर	22564	12278	1766	393	661	168	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
करौली	5052	2705	913	413	341	83	वि	अ वि	अ वि	अ वि
कोटा	5211	3880	2059	404	221	55	सु	सु.	वि	वि
नागौर	17644	13654	2948	628	842	134	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
पाली	12331	5829	1121	413	330	80	वि	वि	अ वि	अ वि
राजसमंद	4551	915	109	154	144	93	अ वि	अ वि	अ वि	अ वि
स.माधोपुर	4994	3179	1261	385	312	81	वि	वि	अ वि	अ वि
सीकर	7742	6716	2719	325	345	106	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
सिरोही	5179	1668	508	266	247	93	अ वि	अ वि	अ वि	अ वि
टौंक	7180	4673	1529	415	269	65	सु.	वि	वि	वि
उदयपुर	14621	2559	266	284	299	105	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित
कुल	342648	192302	61346	11159	11626	104	अ वित	अ वित	अ वित	अ वित

सु. – सुरक्षित दोहन श्रेणी (< 65%)
वि – विदोहन श्रेणी (65%- 85%)
अ वि – अतिदोहन श्रेणी (85%-100%)
अ वित – अतिविदोहित श्रेणी (>100%)

तालिका 3 वैश्विक तापमान वृद्धि के बाद राजस्थान में जल संसाधन पर प्रभाव

भू–जल दोहन/ विदोहन /अतिदोहन प्रभावित श्रेणीयाँ	जिलों की संख्या वार भू–जल दोहन की स्थिति			
	ताजा विदोहन स्तर (प्रतिशत)	तापमान वृद्धि के बाद		
		1% (0.4°C)	2% (0.8°C)	3% (1.2°C)
सुरक्षित दोहन श्रेणी (< 65%)	6	3	1	1
विदोहन श्रेणी (65%-85%)	8	6	6	5
अतिदोहन श्रेणी (85%-100%)	4	7	5	6
अतिविदोहित श्रेणी (>100%)	14	16	20	20
कुल	**32**	**32**	**32**	**32**
सिंचित भूमि के लिए भू–जल की अतिरिक्त आवश्यकता (एम.सी.एम.)		718	1,436	2,154
अतिरिक्त कृषि योग्य भूमि पर सिंचाई के लिए भू–जल की आवश्यकता (एम.सी.एम.)		2,250	4,500	6,750
वाष्पोत्सर्जन द्वारा अतिरिक्त जल की बर्बादी (एम.सी.एम.)		40	81	121

वैश्विक तापमान वृद्धि का राजस्थान के जल स्त्रोतों पर सम्भावित प्रभाव

- तापमान में 1 प्रतिशत की वृद्धि से वाष्पोत्सर्जन में वार्षिक आधार पर 11.7 मिलीमीटर की बढ़ोत्तरी हो जायेगी जिसका अर्थ यह हुआ की सम्पूर्ण राजस्थान के लिये 18540 लाख घनमीटर अतिरिक्त जल की आवश्यकता होगी।
- वर्तमान में सम्पूर्ण राजस्थान में सिंचाई के लिये 98595 लाख घनमीटर भूजल उपलब्ध है। तापमान में न्यूनतम 1 प्रतिशत की वृद्धि से वर्तमान कृषि उत्पादन के स्तर को बनाये रखने के लिये उपलब्ध भूजल स्त्रोतों पर 18.9 प्रतिशत अतिरिक्त दबाव पड़ेगा।
- वृहद एवं तेजी से घटते भूजल स्तर के कारण सिंचाई के लिये जल आहरण हेतु अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होगी।
- भूजल की दृष्टि से सम्पूर्ण राजस्थान को 595 क्षेत्रों में बाँटा गया है जिनमें से वर्तमान में उपयोग के आधार पर 268 भूजल क्षेत्र अतिविदोहित (निषिद्ध) श्रेणी में आते हैं। वैश्विक तापमान वृद्धि के कारण यदि अतिरिक्त भूजल का दोहन किया गया तो लगभग सभी भूजल क्षेत्र निषिद्ध की श्रेणी में आ जायेंगे एवं भविष्य में सिंचाई के लिये भूजल उपलब्ध नहीं होगा।
- जल की उपलब्धता में कमी के कारण किसान सिंचाई के लिये निम्न स्तर का जल प्रयोग करने के लिये बाध्य होंगे। फलस्वरूप कृषि की उत्पादकता में कमी आयेगी व निम्न स्तर का जल प्रयोग करने के कारण अन्य समस्याएँ जैसे मृदा लवणीयता आदि जन्म लेंगी।
- तापमान में वृद्धि के कारण वाष्पन से अतिरिक्त जल हानि होगी फलस्वरूप जल संचयन के लिये बनाई गई संरचनाओं के लिये कम जल उपलब्ध रहेगा व उनकी क्षमताओं का भरपूर प्रयोग संभव नहीं हो पायेगा।

निष्कर्ष

वैश्विक तापमान वृद्धि मनुष्य की खुद पैदा की गई समस्या है जिसका निदान भी उसे ही करना है। एक ओर विश्व भर के वैज्ञानिक, पर्यावरणविद्, पारिस्थितिकीविद् इस घटनाक्रम से चिंतित हैं और इस पर अंकुश लगाने के तमाम उपाय सुझा रहे हैं। दूसरी ओर विकास की अंधी दौड़ में एक दूसरे से आगे निकलने और फिर आगे बने रहने की होड़ में अनेक देश इन उपायों को अपनाने को तैयार नहीं हैं।

ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम करके ही ग्लोबल वार्मिंग पर रोक लगाई जा सकती है। भारत के लिए वैश्विक तापमान वृद्धि अत्यधिक खतरनाक है। इसकी अधिकतर बड़ी नदियाँ, गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र आदि का स्त्रोत ग्लेशियर हैं। वैश्विक तापमान वृद्धि से ग्लेशियरों के पिघलने से इन नदियों का जलस्तर घटेगा जिससे बड़ी संख्या में लोग प्रभावित होंगे। दूसरी ओर ग्लेशियर के पिघलने से समुद्रों का जलस्तर भी बढ़ रहा है। विश्व बैंक के मुख्य अर्थशास्त्री निकोलस के अनुसार वैश्विक तापमान वृद्धि को रोकने के लिए यदि तत्काल उपाय न किया गया तो अगले 50 वर्षों में तापमान दो से तीन डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है।

मृदा एवं जल परीक्षण

एस.के. शर्मा
कृषि विज्ञान केन्द्र, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

कृषि हमारे देश की अर्थव्यवस्था की मेरूदण्ड है क्योंकि हमारे देश में 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि या कृषि आधारित उद्योग–धन्धों पर निर्भर है। जनसंख्या में हो रही निरन्तर बढ़ोत्तरी के कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करने हेतु प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रयोग एवं प्रबन्धन हमारी मूलभूत जिम्मेदारी है। इन संसाधनों में मृदा प्रमुख है। आधुनिक कृषि के युग में फसलों की अधिक पैदावार देने वाली विकसित नवीन किस्मों के प्रयोग के परिणामस्वरूप आवश्यक पोषक तत्वों का अधिक मात्रा में भूमि से लगातार दोहन होने से मृदा की उर्वराशक्ति क्षीण होती जा रही है जो कि टिकाऊ खेती के लिए एक गहरा संकट है। फसलों की भरपूर ऊपज हेतु आवश्यक पोषक तत्वों की उचित एवं अनुपातिक मात्रा में उपयोग करना अनिवार्य हो गया है। विगत वर्षों में रसायनिक उर्वरकों की कीमतों में वृद्धि एवं आपूर्ति में कमी के कारण किसानों द्वारा उर्वरकों का असन्तुलित प्रयोग करने से न केवल आर्थिक हानि होती है, वरन् मृदा स्वास्थ्य पर भी कुप्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में फसलों के समुचित पोषण के लिए मृदा की उत्पादकता एवं उर्वरता बनाये रखना नितान्त आवश्यक है, जिसमें मृदा परीक्षण की अहम् भूमिका है क्योकि इसके आधार पर केवल उन्हीं पोषक तत्वों के प्रयोग की सिफारिश की जाती है जिनकी समुचित मात्रा में आपूर्ति मृदा से नहीं हो पाती है। मृदा परीक्षण के आधार पर न केवल उर्वरकों की सही मात्रा की आवश्यकता ज्ञात की जाती है, वरन् सही उर्वरक के चुनाव, सही प्रयोग विधि व सही समय आदि अन्य पहलुओं का भी पता चलता है। पोषक तत्वों की आवश्यकता एवं भूमि सुधारक रसायनों के प्रयोग में भी मृदा नमूनों द्वारा परीक्षण का विशेष योगदान है। मृदा परीक्षण का मुख्य आधार मृदा नमूना है अतः सही प्रकार से मृदा नमूने लेने पर ही सही मृदा परीक्षण एवं उर्वरकों की सही संस्तुति हो सकती है। सार्थक मृदा परीक्षण के लिए मृदा नमूनों द्वारा परीक्षण किए जाने वाले क्षेत्र का वास्तविक प्रतिनिधित्व होना चाहिए। इसी प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए मृदा परीक्षण का उद्देश्य, नमूने लेने का समय, गहराई, यन्त्र के चुनाव, नमूने लेने की सही विधि के बारे में जानकारी परम आवश्यक है। संक्षेप में मृदा परीक्षण का उद्देश्य मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों की जांच कर उसके आधार पर गुणवत्तायुक्त अधिकतम फसलोत्पादन हेतु सलाह देना है।

एक निश्चित क्षेत्रफल में फसल उत्पादन में वृद्धि तथा उत्पादन के गुणात्मक संवर्धन हेतु मृदा उर्वरता प्रबन्धन करने के लिए ''संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन'' सफल उत्पादन का मुख्य भाग है। जब किसी फसल की एक ही किस्म को हम समान खाद उर्वरकों की मात्रा देते हुए अलग–अलग खेतों में उगाते हैं तो उनकी उपज में अन्तर पाया जाता है, क्योंकि सभी मिट्टियों में पोषक तत्व को पौधों को प्रदान करने की

क्षमता बराबर नहीं होती है। इसलिए मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का संतुलित उपयोग आवश्यक है अन्यथा मिट्टी एवं पौधों में पोषक तत्वों का असंतुलन बढ़ जायेगा जिसका बुरा प्रभाव भूमि एवं फसलोत्पादन क्षमता दोनों पर ही पड़ेगा।

मृदा स्वास्थ्य में गिरावट के मुख्य कारण

- रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग।
- एक ही प्रकार के उर्वरकों का प्रयोग एवं भूमि से समस्त पोषक तत्वों का दोहन।
- फसलचक्र में दलहनी फसलों को शामिल न करना।
- फसलचक्र में हरी खादों के प्रयोग पर ध्यान न देना।
- कार्बनिक खादों का अत्यन्त कम व सही प्रकार से उपयोग न करना।
- फसलों की कटाई के बाद अवशेष को जला देना।
- जैव–उर्वरकों के उपयोग के प्रति जागरूक न होना।

मृदा परीक्षण की आवश्यकता

- मृदा जाँच से भूमि में उपलब्ध नाईट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश तथा अन्य पोषक तत्वों की मात्रा का ज्ञान होता है।
- जो फसल हम बोने जा रहे हैं उस फसल के लिए उपलब्ध तत्व पर्याप्त हैं अथवा नहीं।
- उक्त फसल में कौन–कौन सी एवं कितनी मात्रा में खाद एवं उर्वरक डाले जायें।
- उस भूमि में कौन से सुधारक रसायन की आवश्यकता है और उसकी मात्रा।
- भूमि में जीवांश पदार्थ की मात्रा एवं पौधों को उससे उपलब्ध पोषक तत्व।

मृदा परीक्षण के उद्देश्य

- प्रति इकाई क्षेत्र में कम लागत में कृषि उत्पादन बढ़ाना।
- संतुलित खाद एवं उर्वरक प्रयोगों को बढ़ावा देना।
- मृदा में मुख्य व सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्रा के अनुसार फसल की पोषक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संतुलित उर्वरक सिफारिश देना।

- लवणीय, क्षारीय एवं समस्याग्रस्त क्षेत्रों की पहचान कर भूमि सुधार हेतु सिफारिश कर उत्पादन बढ़ाना।
- बोई जाने वाली फसलों के चयन में सहायता करना।

- **मृदा की जाँच कराने का समय**

- प्रत्येक खेत की मिट्टी अलग–अलग एवं कम से कम तीन वर्ष में एक बार जाँच अवश्य करावें। यदि संभव हो तो प्रति वर्ष करावें।
- बुवाई से कम से कम एक माह पूर्व मिट्टी की जाँच करावें, ताकि बुवाई तक परिणाम आने से उसके अनुसार खाद उर्वरक उचित व सही तरीके से दिये जा सके।
- जहाँ तक हो, नमूना खाली खेत से लेना चाहिए, लेकिन यदि खड़ी फसल में नमूना लेना हो तो कतारों के बीच से लें।

मृदा परीक्षण के सही परिणाम के लिए संकलित नमूना भी सही होना आवश्यक है अन्यथा परिणाम में त्रुटि आने की सम्भावना रहती है ऐसी दशा में मृदा परीक्षण हेतु नमूना लेते समय निम्न बिन्दुओं का अनुसरण करना चाहिएः

- मृदा का नमूना लेने हेतु सबसे उपयुक्त समय मई तथा जून का महीना है।
- कम से कम तीन साल में एक बार मृदा की जाँच अवश्य करानी चाहिए।
- नमूना लेने से पूर्व चयनित यन्त्र को अच्छी तरह से साफ कर, साफ कपड़े से पोंछ लेना चाहिए।
- सर्वप्रथम मृदा नमूना लेने वाले स्थान पर उपस्थित पुरानी पत्तियाँ, जड़ अवशेष, कंकड़ इत्यादि को हटाकर साफ कर ले।
- यदि नमूना लिए जाने वाले क्षेत्र में ली गई फसल, मृदा प्रकार, रंग, संरचना, गठन, ढाल, फसलचक्र प्रबन्ध आदि में समानता न हो तो क्षेत्र को समानता के आधार पर छोटे–छोटे खण्डों में विभक्त कर प्रत्येक खण्ड का अलग–अलग नमूना लेते हैं।
- सामान्यतः प्रत्येक खण्ड से फसल बुवाई से लगभग एक माह पूर्व या उगायी गयी फसल को काटने के उपरान्त खुरपी या फावड़े द्वारा 15–20 अलग–अलग स्थानों से 'V' आकार में मृदा की ऊपरी सतह से 6'' (15 सेमी) गहराई तक 2.5 सेमी मोटी मृदा की एक समान परत काट कर निकाल लेते हैं। इन प्रारम्भिक नमूनों को तसले या परात में एकत्र कर अच्छी तरह मिलाकर पक्के स्थान पर फैला लेते हैं तत्पश्चात् अंगुली से चार बराबर भागों में विभक्त कर आमने सामने के दो भाग को पुनः मिलाकर फैला

लें। यह प्रक्रिया तब तक दोहराते हैं जब तक लगभग 500 ग्राम मृदा नमूना शेष रह जाए जो उस खेत के लिए प्रतिनिधि नमूना होगा। हल्के गीले नमूनों को छाया में सूखाकर साफ पॉलीथीन की थैली में भर लेते हैं।

- बहुवर्षीय वृक्षों जैसे बाग आदि लगाने हेतु मृदा नमूना एक मीटर की गहराई तक ओगर की सहायता से मृदा की ऊपरी सतह से 0–30, 30–60, 60–90 सेमी की गहराई तक अलग अलग स्थानों से लेकर समान गहराई के नमूने से प्रतिनिधि नमूना तैयार करें। अलग गहराई से लिए गए नमूनों को आपस से नहीं मिलाना चाहिए।
- मृदा का नमूना वर्ष में किसी भी समय लिया जा सकता है परन्तु रबी फसलों की कटाई के पश्चात् नमूना लेना अच्छा होता है। साथ ही इस बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए कि मृदा नमूनें प्रत्येक वर्ष उसी समय पर लिए जाऐं जैसे पूर्व वर्षों में लिए गए हों।
- सामान्यतः खड़ी फसल वाले खेत से मृदा का नमूना नही लिया जाता है परन्तु आवश्यक हो तो पौधों की पंक्तियों के बीच से नमूना ले सकते हैं।
- मृदा का नमूना खाद के ढेर, मेड़ सिचाई की नाली, क्षेत्र जहाँ जल्दी ही उर्वरक दिया गया हो, पानी का रूकाव, वृक्षों, नालियों, नहरों, कम्पोस्ट के गड्ढों के पास तथा पेड़ के नीचे से भी नमूना नहीं लेना चाहिए।
- मृदा का नमूना लेते समय नमूना लेने की आवृति का भी ध्यान रखना चाहिए। सामान्यतः नमूने तीन वर्ष में एक बार लिए जाते हैं। परन्तु विशेष परिस्थितियों जैसे सघन कृषि वाले क्षेत्रों या ऐसे चलायमान पोषक तत्वों की जांच करनी हो तो ऐसी दशा में प्रतिवर्ष नमूना लेना लाभप्रद होता है।
- एकत्र किए गए मृदा नमूनों से कंकड़ पत्थर एवं पौधों के अवशेष आदि निकालकर प्रयोगशाला में भेजें।

नमूने पर अंकित करने योग्य सूचनाएँ

- कृषक का नाम एवं पूरा पता
- खेत का खसरा नम्बर या पहचान
- आगामी फसल जो बोना चाहते हों व गत फसल जो ली गई थी।

यह सब सूचना लिखकर एक साफ थैली में भरकर नमूना परीक्षण हेतु प्रयोगशाला में भेजें।

सिंचाई जल परीक्षण

सिंचाई जल में घुलनशील लवण इत्यादि होते हैं, जिनकी मात्रा ज्ञात की जाती है। पानी की गुणवत्ता के आधार पर ही सिंचाई जल में फसल विशेष की सिफारिश करने के लिए तथा किसी भी क्षेत्र की भूमि की उस समस्या को जानने के लिए मिट्टी परीक्षण जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक उस क्षेत्र के सिंचाई जल का परीक्षण भी है। अतः किसान भाईयों को मिट्टी के नमूनों के साथ–साथ अपने क्षेत्र में सिंचाई के लिए प्रयोग किये जाने वाले पानी का नमूना भी साथ भेजकर जांच कराना चाहिए।

सिंचाई जल का नमूना कैसे लें

- सिंचाई का पानी खुले कुँए या ट्यूबवैल से प्राप्त किया जाता है तो पहले एक घंटे तक मोटर को चलाकर पानी का नमूना साफ प्लास्टिक / काँच की बोतल में लेलें।
- सिंचाई जल का नमूना जिस प्लास्टिक / काँच की बोतल में लें उसे उसी पानी से दो–तीन बार अच्छी तरह धोकर नमूना लें।
- सिंचाई जल का नमूना निम्न सूचना के साथ प्रयोगशाला में भेजें – कृषक का नाम व पता, कुएँ में पानी की गहराई, पानी देने से हुई समस्या का विवरण, नमूना लेने का विवरण आदि।

मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में मृदा की जाँच के पश्चात् प्राप्त मान के लिए सुलभ सारणी

मृदा पी.एच :

मृदा की किस्म	पी.एच.मान	सुझाव
अम्लीय	6.5 से कम	सुधार हेतु चूना मिलाऐं
सामान्य	6.5 – 8.7	अधिकतर फसलों हेतु उपयुक्त
लवणीय	8.8–9.3	सुधार हेतु जैविक खाद मिलाऐं
क्षारीय	9.3 से अधिक	सुधार हेतु जिप्सम मिलाऐं

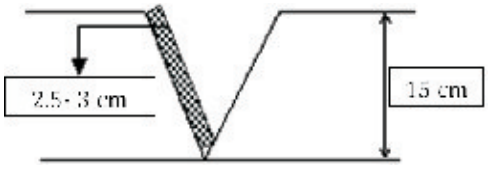

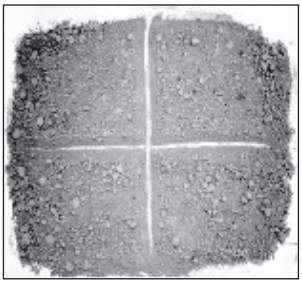

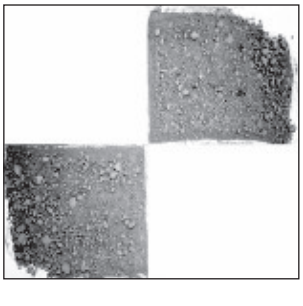

मृदा ई.सी –

ई.सी. मान	सुझाव
0.8 डेसीसाइमन्स प्रति मीटर से कम	सामान्य
0.8 –1.6 डेसीसाइमन्स प्रति मीटर	लवण संवेदनशील फसल न बोयें
1.6 – 2.5 डेसीसाइमन्स प्रति मीटर	लवण सहिष्णु फसल भी होना मुश्किल
2.5 से अधिक	अधिकतर सभी फसलों हेतु हानिकारक

मृदा में उपस्थित पोषक तत्व	कम	मध्यम	उच्च
जैविक कार्बन	< 0.5 प्रतिशत	0.5–0.75 प्रतिशत	> 0.75 प्रतिशत
प्राप्य नत्रजन	< 280 किग्रा/है.	280–560 किग्रा/है.	> 560 किग्रा/है.
प्राप्य फास्फोरस	< 28 किग्रा/ है.	28–56 किग्रा/है.	> 56 किग्रा/है.
प्राप्य पोटाश	< 135 किग्रा/है.	135–335 किग्रा/है.	> 335 किग्रा/है
प्राप्य गंधक	< 10 पीपीएम	10–20 पीपीएम	> 20 पीपीएम
लोहा	< 4.5 पीपीएम	4.5–9 पीपीएम	> 9 पीपीएम
मैग्नीज	< 3.5 पीपीएम	3.5–7 पीपीएम	> 7 पीपीएम
जस्ता	< 0.6 पीपीएम	0.6–1.2 पीपीएम	> 1.2 पीपीएम
ताँबा	< 0.2 पीपीएम	0.2–0.4 पीपीएम	> 0.4 पीपीएम

मृदा प्रयोगशाला से प्राप्त मान को इस सुलभ सारणी के माध्यम से अच्छी तरह समझ सकते हैं कि अमुक पोषक तत्व आपके खेत की मृदा में किस श्रेणी (कम/मध्यम या उच्च) में आता है और उसी के अनुरूप उर्वरकों या रसायनों का प्रयोग कर उत्पादन लागत में कमी कर सकते हैं साथ ही मृदा के स्वास्थ्य में भी सुधार हो सकता हैं और यही आज की प्रमुख आवश्यकता है। सही समय से किया गया मृदा परीक्षण न केवल संतुलित मात्रा में उर्वरकों की संस्तुति एवं प्रयोग से उच्च फसलोत्पादन में सहायक हैं वरन् समस्याग्रस्त भूमि के सुधार में भी लाभदायक है।

खरीफ में दलहन उत्पादन तकनीक

आर.एन. कुमावत एवं आर.आर. मेघवाल
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

दलहनी फसलें

हमारे भोजन में दालों का महत्वपूर्ण स्थान है। दालों में 20 से 25 प्रतिशत प्रोटीन होती है। सभी दलहनी फसलें वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण कर भूमि में नत्रजन की मात्रा में वृद्धि करती हैं। फलियां एवं दानों के अवशेष भूमि में कार्बनिक पदार्थ एवं अन्य पोषक तत्वों की मात्रा में बढ़ोत्तरी कर भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं। दलहनी फसलों से पशुओं के लिए उत्तम गुणों वाला चारा भी प्राप्त होता है। शुष्क क्षेत्र में खरीफ ऋतु में अनेक प्रकार की दलहनी फसलें उगायी जाती हैं।

इसे दलहन एकल, मिश्रित, अंतर–फसल पद्धतियों में तथा कृषि वानिकी, कृषि बागवानी इत्यादि पद्धतियों में भी अपनाया जा सकता है। मरू दलहन शुष्कता की विषम स्थिति का सामना करने, भूमि की उर्वरकता को कायम रखने, आमजनों की पौष्टिक सुरक्षा प्रदान करने तथा कृषि तंत्र में विविधता लाने के लिए ही उगाया जाता है।

मूंग

मूंग राजस्थान में खरीफ ऋतु में उगायी जाने वाली महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। राज्य में इसकी खेती 12 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है। राज्य में मूंग के सकल क्षेत्रफल का 70 प्रतिशत शुष्क क्षेत्र में पाया जाता है। लेकिन क्षेत्र में मूंग की औसत उपज काफी कम है।

उन्नत किस्में

आर. एम. जी. 62 : इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई वाले सीधे होते हैं तथा बीज चमकदार व हल्के हरे रंग के होते हैं। इसको औसत उपज 10–12 क्वि. प्रति हेक्टेयर हैं तथा यह सूखे तथा झुलसा रोगरोधी है। यह किस्म खरीफ एवं जायद दोनों ही ऋतुओं के लिये उपयुक्त है।

आर. एम. जी. 268 : खरीफ एवं जायद के लिये उपयुक्त यह किस्म 65–70 दिन में पकती है। इसकी फलियां पकने तक हरी रहती है तथा एक साथ पकती हैं। पौधे मध्यम ऊँचाई के तथा दाने चमकदार मध्यम आकार वाले होते हैं। यह किस्म ब्लाइट व पत्ती धब्बा रोगरोधी है तथा इसमें सूखा सहन करने की क्षमता है। इसकी उपज 10 से 12 क्वि. प्रति हेक्टेयर होती है।

आर. एम. जी. 344 : यह किस्म भी 65–70 दिन में पकती है। पौधे मध्यम ऊँचाई के तथा सीधे खड़े रहते हैं। इसकी फलियां समूह में एक साथ पकती हैं तथा दाने चमकदार हरे रंग के तथा छोटे से मध्यम आकार वाले होते हैं। यह किस्म ब्लाइट व पत्ती धब्बा रोगरोधी है तथा इसमें सूखा सहन करने की क्षमता होती है। फलियां पकने तक हरी रहती हैं और इसकी औसत पैदावार 8–10 क्वि. प्रति हेक्टेयर होती है।

एस. एम. एल. 668 : यह किस्म 2002 में जारी की गई। इस किस्म के पौधों में 40–42 दिन में फूल आने लगते हैं। इसकी पत्तियां चौड़ी तथा गहरे रंग की होती हैं। फलियां लम्बी, मोटी तथा झुकावदार तथा पकने पर गहरे भूरे रंग की हो जाती हैं। इसके दाने सुडौल तथा बड़े आकार के होते हैं। इसकी औसत उपज 7–8 क्वि. प्रति हेक्टेयर है।

जी. एम. 4 : इस किस्म के पौधों में 35–41 दिन में फूल आने लगते हैं तथा 61–68 दिन में पक जाती है। इसके पौधे 50–58 से.मी. ऊँचे व सीधे होते हैं तथा इसकी फलियां एक साथ पकती हैं। इसके दाने हरे रंग के तथा बड़े आकार के होते हैं। इसकी औसत उपज 13–14 क्वि. प्रति हेक्टेयर होती है।

आई.पी.एम. 2–3 : भारतीय दलहन अनुसंस्थान केन्द्र, कानपुर द्वारा विकसित यह किस्म सिंचित एवं असिंचित दोनों ही क्षेत्रों में उपयुक्त है। यह किस्म 62 से 68 दिनों में पककर तैयार हो जाती है तथा इसकी उपज 7–8 क्वि. प्रति हेक्टेयर पाई गई है। यह किस्म पति वाइरस रोग की प्रतिरोधी भी पाई गयी है।

भूमि एवं तैयारी

मूंग की खेती के लिए दोमट एवं बलुई दोमट भूमि सर्वोत्तम होती है। भूमि में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल या डिस्क हैरो चलाकर करनी चाहिए तथा फिर एक क्रॉस जुताई हैरो से एवं एक जुताई कल्टीवेटर से कर पाटा लगाकर भूमि समतल कर देनी चाहिए।

बीज एवं बुवाई

मूंग की बुवाई 15 जुलाई तक कर देनी चाहिए। देरी से वर्षा होने पर शीघ्र पकने वाली किस्मों की बुवाई 30 जुलाई तक की जा सकती है। स्वस्थ एवं अच्छी गुणवत्ता वाला उपचारित बीज बुवाई के काम लेना चाहिए। बुवाई पंक्तियों में करनी चाहिए। पंक्तियों के बीच की दूरी 45 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 से.मी. उचित होती है।

खाद एवं उर्वरक

दलहनी फसल होने के कारण मूंग को कम नत्रजन की आवश्यकता होती है। मूंग के लिए 20 किलो नत्रजन तथा 40 किलो फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। नत्रजन एवं फॉस्फोरस की

समस्त मात्रा 87 कि.ग्रा. डी.ए.पी. एवं 10 किलो यूरिया के द्वारा बुवाई के समय देनी चाहिए। मूंग की खेती हेतु खेत में दो तीन वर्षों में एक बार 5 से 10 टन गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट खाद देनी चाहिए।

मोठ

मोठ का दाना, हरा चारा, हरी सब्जी व हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह प्रोटीन (20 से 25 प्रतिशत) का एक अच्छा स्त्रोत है। इसको दाल के रूप में खाया जाता है तथा इसका उपयोग दाल–मोठ व पापड़ बनाने में भी किया जाता है। यही कारण है कि अब मोठ की फसल एक औद्योगिक फसल का दर्जा प्राप्त कर चुकी है। इससे सम्बंधित उद्योग, राजस्थान के बीकानेर जिले में मुख्य रूप से पनप रहे हैं । मोठ की जड़ों में पाई जाने वाली राइजोबियम जीवाणु युक्त गाँठे भूमि में लगभग 20 से 25 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से स्थापित करके भूमि में आवश्यक तत्वों की पूर्ति करती हैं। इतना सब कुछ होने पर भी आनुवांशिक गुणों से परिपूर्ण मोठ की फसल की उपादकता (5–8 क्विं./हेक्टेयर), अन्य दलहनों की तुलना में सबसे कम है। इसका मुख्य कारण अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में मोठ को उगाने वाले किसानों द्वारा उन्नत तकनीकों को न अपनाना तथा विकसित उन्नतशील किस्मों को नजर अंदाज करना है।

भूमि का चयन: मोठ की खेती के लिए रेतीली, बलुई–दोमट मिट्टी उपयुक्त पायी गयी है। अधिक मात्रा में जल संग्रहण करने वाली चिकनी मिट्टी उसके लिए अच्छी नहीं रहती है। मोठ की फसल भूमि के खारेपन से प्रभावित होती है। अतः खारी भूमि में मोठ न उगायें। मोठ की खेती रेत के टीलों व ऊँची–नीची असमतल भूमियों में भी सफलता से की जाती है तथा इसके लिए अधिक पोषक तत्वों युक्त भूमियों की भी आवश्यकता नहीं होती है।

भूमि की तैयारी: मोठ की खेती के लिये एक दो जुताइयाँ काफी होती हैं। खेत को समतल कर लेना आवश्यक होता है। साथ ही मेड़बन्दी कर देनी चाहिए ताकि वर्षा का पानी बहकर खेत से बाहर न जाए। खेत में जल संचय के लिए ढाल की विपरीत दिशा में मेड़ बनाई जानी चाहिए। अतिरिक्त वर्षा के पानी की निकासी के लिए भी उपयुक्त प्रबंध किये जाने चाहिए।

उन्नत किस्में

आर.एम.ओ. 40 : कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जल्दी पकने (60 से 64 दिन) एवं सीधी बढ़ने के कारण यह किस्म प्रचलित है। जल्दी पकने के कारण यह किस्म मोजेक वायरस के प्रकोप से बचकर लगभग 5 से 7 क्वि. प्रति हेक्टेयर की उपज देती है। इसकी सारी फलियां एक साथ पक जाती हैं। इसके पौधे कद में छोटे होते हैं। अतः इस किस्म में चारा कम प्राप्त होता है। बीकानेर के क्षेत्रों में यह किस्म काफी प्रचलित है।

आर.एम.ओ. 257 : यह किस्म 64 से 66 दिन में पककर 5–7 क्वि. प्रति हैक्टर उपज देती है। यह किस्म शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क दोनों ही प्रकार के क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पायी गई है।

आर.एम.ओ. 435 : यह किस्म 64 से 67 दिन में पककर 6–7 क्वि. प्रति हेक्टेयर उपज देती है। यह किस्म सीधी वृद्धि वाली है। सूखे एवं मोजेक वायरस के प्रकोप से यह पूर्ण रूप से सुरक्षित है। यह किस्म आर.एम. ओ. 257 के मुकाबले 10 से 12 प्रतिशत अधिक उपज देती है।

काजरी मोठ 2 : यह किस्म जाड़िया व आर.एम.ओ. 40 के संकरण से बनी है। यह 64–67 दिन में पकती है तथा कम व अधिक वर्षा वाले दोनों ही क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पायी गयी है। यह अर्द्ध–स्तम्भकार वृद्धि वाली किस्म है। इसमें फलियाँ बहुत अधिक लगती हैं। इसकी उत्पादन क्षमता 7–8 क्विं. प्रति हेक्टेयर है।

बुवाई का समय तथा बीज दर

इस फसल की बुवाई जल्दी करने से पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अधिक हो जाती है तथा फलियाँ कम लगती हैं। इसके विपरीत देरी से बुवाई करने पर पौधों का कद छोटा होता है, परन्तु अधिक माात्रा में फली लगने के कारण अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है। अतः शुष्क क्षेत्रों में इसकी बुवाई का उपयुक्त समय 15 से 25 जुलाई के मध्य है। मोठ के लिए 10–12 किलो प्रति हेक्टेयर की बीज दर उपयुक्त पाई गयी है।

खाद व उर्वरक प्रबंधन

दलहनी फसल होने के कारण मोठ को नत्रजन की कम मात्रा की आवश्यकता होती है। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 20 किलो नत्रजन व 40 किलो फॉस्फोरस की आवश्यकता होती है। मोठ के लिए समन्वित पोषक प्रबंधन उचित रहता है। इसके लिए खेत तैयारी के समय 2.5 टन गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट खाद की मात्रा भूमि में अच्छी प्रकार से मिला देनी चाहिए। इसके उपरान्त बुवाई के समय 87 कि. ग्रा. डीएपी एवं 10 कि.ग्रा. यूरिया भूमि में मिला देना चाहिए। बुवाई से पहले 600 ग्राम राइज़ोबियम कल्चर को एक लीटर पानी व 250 ग्राम गुड़ के घोल में मिलाकर बीज को उपचारित कर छाया में सुखाकर बोना चाहिए।

खरीफ में बाजरा उत्पादन तकनीक

नन्द किशोर जाट एवं भगवान सिंह
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान जोधपुर

राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में खरीफ में उगायी जाने वाली खाद्यान्न फसलों में बाजरा मुख्य फसल है। बाजरा राज्य के असिंचित एवं सिंचित क्षेत्रों में खरीफ ऋतु में लगभग 39.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में उगाया जाता है जिससे 44.1 लाख टन उत्पादन होता है। राज्य में बाजरा की औसत उपज 933 किग्रा. प्रति हेक्टेयर है (2013–14) जो इसकी उत्पादन क्षमता से काफी कम है। परन्तु उन्नत तकनीकियों के प्रयोग से बाजरा की अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

भूमि एवं तैयारी

बाजरा की खेती दोमट, बलुई दोमट एवं बलुई भूमि में सफलतापूर्वक की जा सकती है। भूमि में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि अधिक समय तक खेत में पानी भरा रहना फसल के लिए नुकसानदायक हो सकता है। भूमि की तैयारी के लिए पहली वर्षा के पश्चात् पहली जुताई मिट्टी पलटने पाले हल या डिस्क हैरो से करने के पश्चात् एक क्रौस जुताई हैरो द्वारा करके पाटा लगाकर खेत को ढेले रहित एवं समतल कर देना चाहिए।

उन्नत किस्में

बाजरा की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए बीज की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बीज की किस्म व उसकी गुणवत्ता अच्छी होनी चाहिए। बाजरा की अनेक उन्नत किस्में विकसित की गयी हैं जिन्हें उगाकर अनाज एवं चारे की अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है उन्नत किस्मों का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है।

किस्म	पकने की अवधि (दिनों में)	औसत उपज (क्विं./हेक्टेयर)	विशेषताएं
राज–171	80–85	12–15	डाउनी मिल्डयु रोग प्रतिरोधी
सी जेड पी 9802	74–82	14–18	कम वर्षा वाले क्षेत्रों हेतु उपयुक्त। जोगिया रोग प्रतिरोधी
एच एच बी–67	65–70	12–15	वर्षा की कमी या अधिकता दोनों हेतु उपयुक्त, तुलासिता रोग प्रतिरोधी
आर एच बी–177	70–75	16–18	सिट्टों पर रोयें पाये जाने से पक्षियों से कम नुकसान। डाउनी मिल्डयु रोग प्रतिरोधी
एम पी एम एच – 17	75–80	25–28	वर्षा आधारित क्षेत्रों हेतु संस्तुत तुलासिता एवं ब्लास्ट के प्रति प्रतिरोधी

बीज दर एवं बुवाई

बाजरा की बुवाई का समय किस्मों के पकने की अवधि पर बहुत कुछ निर्भर करता है तथा बुवाई के समय का फसल की उपज पर बहुत प्रभाव पडता हैं। बीज स्वस्थ एवं अच्छी गुणवत्ता वाला होना चाहिए तथा उपचारित बीज ही बुवाई के काम लेना चाहिए एवं बुवाई कतारों में करनी चाहिए। बाजरा की दीर्घावधि किस्म की बुवाई जुलाई के प्रथम सप्ताह में, मध्यम अवधि किस्मों की बुवाई 10 जुलाई तक तथा शीघ्र पकने वाली किस्मों की बुवाई 10 से 20 जुलाई तक की जा सकती है। अच्छी उपज के लिए खेत में पौधों की उचित संख्या होनी चाहिए। बाजरा की बुवाई कतारों में 40 से 45 सेमी. की दूरी पर करनी चाहिए। बुवाई से पहले बीजों को थायरम या केप्टान 2.5 ग्राम दवा प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। बाजरा की बीज दर, बुवाई का समय, बुवाई की विधि एवं दूरी का विवरण नीचे तालिका में दिया गया है।

बीज दर (किग्रा./हेक्टेयर)	बुवाई का समय	बुवाई की विधि	दूरी (सेमी.) कतार से कतार पौधे से पौधे
4–5	• दीर्घावधि (80–90 दिन) किस्मों जुलाई के प्रथम सप्ताह • मध्यम अवधि (70–80 दिनों) किस्मों 10 जुलाई तक • शीघ्र पकने वाली किस्में (65–70 दिन) 10 से 20 जुलाई तक	कतारों में	40–45 10–15

बीजोपचार

बाजरा में गून्दिया या चैपा से फसल को बचाने हेतु बीज को नमक के 20 प्रतिशत घोल में लगभग पांच मिनट तक डुबोकर तैरते हुए हल्के बीज व कचरे को बाहर फेंककर बाकी बचे हुए बीजों को साफ पानी में धोकर, अच्छी प्रकार छाया में सुखाने के बाद बोने के काम में लेना चाहिए। बीज बोने से पहले थायरम या केप्टान 2.5 ग्राम दवा प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। बाजरा की बुवाई से पूर्व बीजों को एजोटोबैक्टर कल्चर से उपचारित करना लाभदायक रहता है। हरित बाली रोग की रोकथाम के लिए बीज को 6 ग्राम एप्रोन एस.डी.–35 से प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। दीमक की रोकथाम हेतु 4 मि. ली. क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. से प्रति किग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए।

खाद व उर्वरक

पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए उचित पोषक तत्व प्रबन्धन करना आवश्यक हैं। खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग से पहले मिट्टी की जाँच कर लेनी चाहिए। भूमि की तैयारी करते समय बाजरा की फसल के लिए

5 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद प्रयोग करनी चाहिए। इसके बाद वर्षा आधारित फसल में 40 किग्रा. नाइट्रोजन व 40 किग्रा. फॉस्फोरस व सिंचित अवस्था में 60 किग्रा. नाइट्रोजन व 40 किग्रा. फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। बुवाई करते समय फॉस्फोरस की पूरी मात्रा व नाइट्रोजन की आधी मात्रा देनी चाहिए। उर्वरकों को सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल द्वारा बुवाई के साथ देना लाभप्रद रहता है। शेष 20 किग्रा. नाइट्रोजन को फसल जब फसल एक महीने की हो जाए तो निराई गुड़ाई के बाद देना चाहिए।

फसल चक्र

अच्छी पैदावार प्राप्त करने एवं भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने हेतु उचित फसल चक्र अपनाना आवश्यक है। वर्षा आधारित खेती के लिए बाजरा के बाद अगले वर्ष दलहन फसल जैसे ग्वार, मूँग या मोठ लेनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों के लिए बाजरा–गेहूँ, मूँग–गेहूँ/जीरा/सरसों फसल चक्र अपनाना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

खरीफ की फसलों को खरपतवार मुक्त रखने के लिए कम से कम दो बार निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है। फसल जब 25–30 दिन की हो जाये तो एक गुड़ाई कस्सी से कर आवश्यकतानुसार दूसरी निराई–गुड़ाई प्रथम निराई–गुड़ाई के 15–20 दिन बाद करनी चाहिए। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु बाजरा में अंकुरण से पहले 1.0 किग्रा. एट्राजीन (सक्रिय तत्व) 600 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

जल प्रबन्धन

पौधों की उचित बढ़वार के लिए भूमि में पर्याप्त नमी का होना अति आवश्यक है वर्षा से प्राप्त जल के अधिक उपयोग के लिए खेत के चारों तरफ मेड़बन्दी करके खेत का पानी खेत में रखना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भूमि में उपलब्ध नमी के वाष्पीकरण द्वारा नुकसान को रोकने के लिए फसल की पंक्तियों के बीच खरपतवार या फसल के अवशेषों के बिछावन का प्रयोग लाभप्रद रहता है। इसके अतिरिक्त फसल की बुवाई कूंड विधि द्वारा करने से वर्षा जल गहरे कुंडों में इकट्ठा हो जाता है तथा खेत में नमी अधिक दिनों तक संचित रहती है जिससे फसल की अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

सिंचित क्षेत्रों में पर्याप्त वर्षा न होने पर सिंचाई करनी चाहिए। बाजरा की फसल के लिए 3–4 सिंचाई पर्याप्त होती हैं। ध्यान रहे दाना बनते समय खेत में अधिक नमी रहनी चाहिए। इससे दानों का विकास अच्छा होता है एवं दाने व चारे की उपज में बढोत्तरी होती है।

पपड़ी प्रबन्धन

फसल की बुवाई के बाद अंकुरण से पहले बरसात हो जाये तथा वर्षा के बाद धूप निकल जाये तो भूमि की ऊपरी सतह सख्त हो जाती है तथा सूखकर कठोर पपडी बनने के कारण बीज अंकुरित होकर बाहर नहीं आ पाता है। पपड़ी की समस्या से बचने के लिए कुंडों में 8–10 टन गोबर या कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करना लाभदायक रहता है।

कीट व रोग नियंत्रण

विभिन्न प्रकार के कीट व रोग बाजरा की फसल को नुकसान पहुँचाते हैं।

खरीफ खाद्यान्न फसलों में कीट, बीमारियां व उनका नियंत्रण

कीट /बीमारियां	लक्षण/नुकसान	उपाय/ नियंत्रण
दीमक	दीमक बाजरा के पौधों की जडें खाकर नुकसान पहुँचाती है।	• अन्तिम जुताई पर क्लोरोपायरीफॉस 1.5 प्रतिशत पाउडर 20 से 25 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में मिलायें। • क्लोरोपायरीफॉस 4 मि.ली. प्रति किग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करना। • यदि सिंचाई की सुविधा हो तो खड़ी फसल में सिंचाई के पानी के साथ 4 लीटर क्लोरोपायरीफॉस प्रति हेक्टेयर देना।
कातरा	कातरे की लटें फसल को प्रारम्भिक अवस्था में काटकर नुकसान पहुँचाती हैं।	• कातरे के नियंत्रण हेतु क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत पाउडर 20–25 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करना।
सफेद लट	इस कीट की लट व प्रौढ़ दोनों फसल को नुकसान पहुँचाते हैं।	• एक किग्रा. बीज में 3 कि.ग्रा. क्यूनालफॉस 5 प्रतिशत कण मिलाकर बुवाई करनी चाहिए। • खड़ी फसल में 4.0 लीटर क्लोरोपायरीफॉस प्रति हेक्टेयर की दर से सिंचाई के पानी के साथ देनी चाहिए।
जोगिया	इस रोग के कारण पौधे के सिट्टे पत्तियों की संरचना में बदल जाते हैं, तथा प्रभावित पौधों की पत्तियां पीली या सफेद रंग की हो जाती हैं।	• रोग रोधी किस्में जैसे एच एच बी–67, आरएचबी–121, राज–171, सीजेडपी–9802 की बुवाई करनी चाहिए। • एप्रोन एमडी–35 की 6 ग्राम या एग्रोसन जी.एन. 2.5 ग्राम मात्रा प्रति किग्रा. की दर से बीजोपचार करना। • खड़ी फसल में रोग से प्रभावित पौधे उखाड़ कर मैन्कोजेब नामक फफूँदीनाशी की 2 किग्रा. मात्रा का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना।

अरगट या चेपा	इस बीमारी में पौधों के सिट्टों पर भाहद जैसा गुलाबी पदार्थ दिखायी देता है जो कुछ दिन बाद भूरा एवं चिपचिपा होकर काले पदार्थ के रुप में बदल जाता है।	• फसल पर सिट्टे बनते समय 2.5 किग्रा. जिनेब या 2 किग्रा. मैन्कोजेब के कम से कम 3 छिड़काव तीन–चार दिन के अन्तराल पर करने चाहिए। • प्रमाणित एवं उपचारित बीज बुवाई के लिए प्रयोग करना चाहिए।
स्मट	इस बीमारी के कारण फसलों मे दानें काले रंग के पाउडर के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।	• इस बीमारी के बचाव हेतु प्रमाणित बीज का प्रयोग करना चाहिए। • उचित फसल चक्र अपनाना। • फसल पर 1.5 किग्रा. विटावैक्स को 500 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें।
पत्ती धब्बा	इस बीमारी के लक्षण पत्तियों की निचली सतह पर हल्के भूरे काले रंग के नाव के आकार के धब्बों के रुप में देखे जा सकते हैं।	• जिनेब नामक फफूँदी नाशक के 0.20 प्रतिशत घोल का छिडकाव करने पर इस बीमारी को नियंत्रित किया जा सकता है।

कटाई व गहाई

बाजरा के सिट्टे जब हल्के भूरे रंग में बदलने लगे और पौधे सूखने लगें तथा दानों में नमी लगभग 20 प्रतिशत हो तब फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। कटाई के बाद सिट्टों को अलग कर अच्छी प्रकार सुखाकर थ्रेशर द्वारा दानों को अलग कर लेना चाहिए।

उपज व आर्थिक लाभ

उन्नत विधियों द्वारा खेती करने पर बाजरा की वर्षा आधारित फसल से औसतन 12–15 क्विंटल दाने की एवं 30 से 40 क्विंटल प्रति हेक्टेयर चारे की उपज प्राप्त हो जाती है, जिससे 14 से 16 हजार रुपये प्रति हेक्टेयर का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

रबी तिलहन की उन्नत खेती

आर.आर. मेघवाल, ए.एस. तोमर एवं मनीष चौधरी
कृषि विज्ञान केन्द्र, भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

सरसों भारत की एक प्रमुख तिलहनी फसल है। क्षेत्रफल एवं उत्पादन की दृष्टि से इसका दूसरा स्थान है। हमारे देश में यह वर्ष 2014–15 के दौरान 5799080 हेक्टेयर में उगाई गई थी जिससे 6282440 टन उपज मिली। राजस्थान देश मे नंबर एक उत्पादक राज्य है उसके बाद मध्य प्रदेश एवं हरियाणा का स्थान आता है। देश का लगभग आधा सरसों का उत्पादन राजस्थान राज्य में होता है। तरामीरा भी राजस्थान की एक प्रमुख तिलहनी फसल है। इसका क्षेत्रफल वर्षा के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। वर्ष 2014–15 में इसका क्षेत्रफल 160000 हेक्टेयर तथा उत्पादन 88507 टन था।

तारामीरा

तारामीरा सभी क्षेत्रों में पैदा किया जा सकता हैं। इसको अनुपजाऊ एवं अनुपयोगी भूमि में भी बोया जा सकता है। इसमें तेल की मात्रा लगभग 35 प्रतिशत पायी जाती है।

उन्नत किस्म

आर.टी.एम. 314 : बारानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत उपज 12–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा पकाव 130–140 दिन है। इसमें 36.9 प्रतिशत तेल की मात्रा होती है। इसके हज़ार दानों का वज़न 3–5 ग्राम व इसकी शाखाएँ फैली हुई होती हैं।

भूमि का चुनाव : तारामीरा हेतु हल्की दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त रहती है। अम्लीय एवं ज्यादा क्षारीय भूमि इसके लिए बिल्कुल उपयोगी नहीं हैं।

खेत की तैयारी एवं भूमि उपचार : तारामीरा की खेती अधिकांशतः बारानी क्षेत्रों में जहां अन्य फसलें सफलतापूर्वक पैदा नही की जा सकती हैं, वहां पर इसकी खेती की जा सकती हैं। खरीफ की चारे, मूंग, चंवला, ज्वार आदि की फसल लेने के बाद यदि नमी हो तो एक हल्की जुताई करके सफलतापूर्वक इसे बोया जा सकता है। जहां तक सम्भव हो वर्षा ऋतु में तारामीरा की बुवाई हेतु खेत खाली नहीं छोड़ना चाहिए। दीमक और जमीन के अन्य कीड़ो की रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व जुताई के समय क्यूलनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर खेत में बिखेर कर जुताई करनी चाहिए।

बीज की मात्रा एवं उपचार : एक हेक्टेयर भूमि हेतु 5 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है। बुवाई से पहले 2.5 ग्राम मैन्कोजेब प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

बुवाई : बारानी क्षेत्र में तारामीरा की बुवाई का समय, मिट्टी की नमी व तापमान पर निर्भर करता है। नमी की उपलब्धता के आधार पर इसकी बुवाई 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर तक कर देनी चाहिए। बीज कतारों में बोयें व कतार से कतार की दूरी 40–45 से.मी. रखें।

उर्वरक : फसल में 30 किग्रा नत्रजन एवं 15 किग्रा फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। उर्वरकों को बुवाई के समय ही ऊर देना चाहिए। अंतिम जुताई के समय 250 किग्रा जिप्सम प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में मिलाऐं।

सिंचाई : जहां सिंचाई के साधन उपलब्ध हों वहां प्रथम सिंचाई 40 से 50 दिन में, फूल आने से पहले करें। तत्पश्चात् आवश्यकता पड़ने पर दूसरी सिंचाई दाना बनते समय करें।

निराई गुड़ाई : फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई के 20 से 25 दिन बाद निराई–गुड़ाई करें। यदि पौधों की संख्या अधिक हो तो बुवाई के 20–25 दिन बाद अनावश्यक पौधों को निकाल कर पौधे से पौधे की दूरी 8–10 से.मी. कर देनी चाहिए।

फसल संरक्षण

मोयला : मोयला कीट लगते ही मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत या कार्बोरिल 5 प्रतिशत या मैलाथियॉन 5 प्रतिशत चूर्ण 25 किग्रा/है. की दर से फसल पर भुरकाव करें अथवा मैलाथियॉन 50 ईसी. या मिथाईल डिमेटोन 25 ईसी सवा लीटर या डायमिथयोट 30 ईसी 875 मिलीलीटर या कार्बोरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण ढाई किग्रा का पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

सफेद रोली, झुलसा, तुलासिता : इन रोगों के लक्षण दिखाई देते ही डेढ़ किग्रा मैन्कोजेब या जाइनेब का पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

फसल की कटाई : फसल में जब पत्ते झड़ जायें और फलियां पीली पड़ने लगे तो फसल काट लेनी चाहिए अन्यथा कटाई में देरी होने पर दानें खेत में हो झड़ जाने की आशंका रहती है।

रायड़ा/सरसों

रायड़ा राजस्थान की प्रमुख तिलहनी फसल है। इसकी खेती राज्य के सभी जिलों में की जाती है।

उन्नत किस्में

गिरीराज : यह 137–153 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है। यह राजस्थान के बारानी एवं सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्म है। यह सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर से विकसित की गई है। इसमें तेल की मात्रा 42 प्रतिशत होती है। और 22–27 क्विं. प्रति हेक्टेयर औसत उपज देती है।

एन आर सी डी आर–2 : सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर द्वारा विकसित की गई है। यह किस्म 131–156 दिनों में पक कर तैयार होती है। इस किस्म की औसत उपज क्षमता 19–26 क्विं./हेक्टेयर तथा बीजों में तेल की मात्रा 36.5 से 42.5 प्रतिशत तक पाई जाती है।

पूसा सरसों 26 : भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकासित यह किस्म पछेती बुवाई (नवम्बर तक) के लिए उपयुक्त है। इस किस्म की फसल पकाव अवधि 120–130 दिनों की है तथा पकाव के समय बढ़ती गर्मी को भी सहन करने की क्षमता रखती हैं। इस किस्म की औसत उपज 16 क्विं./हेक्टेयर तथा बीजों में तेल की मात्रा 35–37 प्रतिशत तक पाई जाती है।

पूसा सरसों –27 : यह किस्म भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म की औसत उपज 15 क्विं./हेक्टेयर तथा बीजों में तेल की मात्रा 40–42 प्रतिशत तक पाई जाती है। यह किस्म अगेती बुवाई के लिए उपयुक्त है।

एन.आर.सी.एच.बी. –101 : यह किस्म सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर द्वारा विकसित की गई है। यह किस्म 130–135 दिनों में पककर तैयार होती है तथा सिंचित क्षेत्रों में देरी से बुवाई के लिये भी उपयुक्त हैं। इस किस्म की औसत उपज क्षमता 14–16 क्विं./हेक्टेयर तथा बीजों में तेल की मात्रा 35–39 प्रतिशत तक पाई जाती है।

खेत का चुनाव व तैयारी : सरसों हेतु दोमट व हल्की दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। अच्छे जल निकास वाली मिट्टी जो लवणीय एव क्षारीय न हो, ठीक रहती है। सरसों की खेती बरानी एवं सिंचित दोनों ही प्रकार से की जाती है। बारानी खेती के लिये खेत को खरीफ में खाली छोड़ना चाहिए। पहली जुताई वर्षा ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से करें। इसके बाद 3–4 जुताई करें। सिंचित खेती के लिय भूमि की तैयारी बुवाई के 3–4 सप्ताह पूर्व प्रारम्भ करें।

जैविक खाद एवं भूमि उपचार : सिंचित फसल के लिये तीन वर्ष में एक बार प्रति हैक्टर 8–10 टन व असिंचित क्षेत्र में 4–5 टन सड़ा हुआ देशी खाद बुवाई के कम से कम तीन चार सप्ताह पूर्व खेत में ड़ालकर खेत तैयार करें। दीमक और अन्य कीड़ो की रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व अन्तिम जुताई के समय क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर खेत में डालकर जुताई करनी चाहिए। नमी को ध्यान में रखकर जुताई के बाद पाटा लगाऐं।

बीज की मात्रा, बीजोपचार एवं बुवाई : बुवाई के लिये 3–4 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहता है। बुवाई से पहले बीज को 2.5 ग्राम मैन्कोजैब प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करके ही बोऐं। पौधों के बीच की दूरी 10 से.मी. रखते हुए कतारों में 5 सेन्टीमीटर गहरा बीज बोऐं। कतार से कतार की दूरी 30 सेमी रखें।

बारानी में सरसों की बुवाई 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर तक कर देनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में इसकी बुवाई अधिक से अधिक अक्टूबर के अन्त में कर देनी चाहिए ।

उर्वरक प्रयोग: सिंचित फसल के लिये 60 कि.ग्रा. नत्रजन, 30–40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 250 कि.ग्रा. जिप्सम या 40 कि.ग्रा. गन्धक चूर्ण प्रति हेक्टेयर दें। हल्की भूमि में 80 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर देना लाभदायक पाया गया है। नत्रजन की आधी मात्रा व फॉस्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय पर दें तथा शेष नत्रजन की मात्रा पहली सिंचाई के साथ दें।

सिंचाई: रायड़ा को तीन सिंचाइयों की आवश्यकता होती है, पहली सिंचाई शाखा फूटते समय 21 से 30 दिन पर, दूसरी फूल आना शुरू होने पर 40–45 दिन एवं तीसरी सिंचाई फली बनते समय 70–80 दिन पर करें। यदि मिट्टी बलुई और पानी पर्याप्त मात्रा में हो तो चौथी सिंचाई दाना पकते समय 95 दिन की अवस्था पर करें। फव्वारा विधि द्वारा तीन सिंचाई बुवाई के 30, 45 व 75 दिन भी अवस्था पर चार घण्टे फव्वारा चलाकर दें।

निराई–गुड़ाई: पौधों की संख्या अधिक हो तो बुवाई के 20 से 25 दिन बाद निराई के साथ छटाई कर पौधे निकाल दें तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 से 12 सेमी. कर दें। सिंचाई के बाद गुड़ाई करने से खरपतवार नष्ट होने के साथ फसल की बढ़वार अच्छी होती है।

पौध संरक्षण

पेन्टेड बग व आरा मक्खी: अंकुरण के 7–10 दिन में ये कीट अधिक हानि पहुँचाते हैं। इनकी रोकथाम के लिये 7.5 ग्राम इमीडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू एस. प्रति एक कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करें। मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत चूर्ण 20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकें।

मोयला: फसल में 50 से 60 मोयला प्रति सेमी. पौधे की केन्द्रीय शाखा या 30 प्रतिशत पौधे ग्रसित होने पर नियंत्रण हेतु छिड़काव किया जाए। मोयला की रोकथाम हेतु मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत या कार्बोरिल 5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर भुरकाव करना चाहिए।

सफेद रोली: रोग के लक्षण दिखाई देते ही डेढ़ से दो किलो मैन्कोजेब को 500–600 लीटर घोल बनाकर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करना चाहिए।

छाछ्या: रोग दिखाई देते ही प्रति हेक्टेयर 20 कि.ग्रा. गन्धक चूर्ण का भुरकाव करना चाहिए।

शुष्क क्षेत्रों में देशी बेर के पौधों से उन्नत किस्म के फल

हरिदयाल, पी.एस. भाटी एवं एस.के. शर्मा
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

बेर विषम परिस्थितियों के अनुकूल झाड़ीनुमा पौधा है। ऊँची–नीची, उबड़–खाबड़, लवणीय व क्षारीय भूमि में जहाँ पर अन्य खाद्यान्न फसलें आसानी से नहीं उगायी जा सकती हैं, वहाँ पर उचित देखभाल से इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके फलों में गूदे की मात्रा अधिक होती है। फलों का उपयोग ताजा व सुखाकर खाने में, शरबत, मुरब्बा, जैम, स्क्वैश के रूप में, तने को ईंधन व कृषि यन्त्र बनाने में, टहनियों को फसल सुरक्षा के लिये बाड़ बनाने तथा पत्तियों को जानवरों के लिये चारे के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त पत्तियां सड़कर भूमि में जीवांश की मात्रा बढ़ाकर भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाती हैं। बढ़ते हुए रेगिस्तान को कम करने के लिए, वायु व पानी के द्वारा भूमि कटाव कम करने में बेर की फसल का बड़ा ही योगदान है। इसके वृक्षों में निम्नलिखित विशेषताएं पायी जाती हैं :–

- गहरा एवं विस्तृत जड़ तन्त्र
- तेज हवा के प्रति सहनशीलता
- सूखा सहन करने की क्षमता
- लवण सहन करने की क्षमता
- कम देखरेख में अधिक पैदावार

देशी बेर के पेड़ों को वानस्पतिक प्रवर्द्धन के द्वारा उन्नत किस्म के पौधों में परिवर्तित किया जा सकता है जिनसे उन्नत किस्म के अच्छी गुणवत्ता के फल प्राप्त किये जा सकते हैं।

देशी बेर की झाड़ी की कटाई–छंटाई

देशी बेर के पेड़ों को जमीन से एक फुट की ऊँचाई तक तेज धार वाली आरी, कुल्हाड़ी या कोंठ के द्वारा ऊपर के भाग को काटकर अलग कर देना चाहिए। यह कार्य मई के महीने में करना चाहिए जब पेड़ पत्तियां गिराने के बाद सुषुप्तावस्था में हो तथा पेड़ के चारों तरफ एक मीटर के घेरे के थाले बनाकर उसमें एक फीट गहरी खुदाई कर के खुला छोड़ देना चाहिए। जिससे थाले में धूप भली भांति लग सके और वायु संचार सुचारु रुप से हो सके।

मानसून के समय कटे हुए स्थान के नीचे बहुत से कल्ले निकलने शुरु हो जाते हैं। जुलाई के महीने में निकले हुए कल्लों में से दो या तीन कल्लों को छोड़ कर बाकी सभी को सिकेटियर की सहायता से

उन्नत किस्म में परिवर्तित करने के लिए देशी बेर के पौधे को मई के महीने में काटना

हटा देना चाहिए, फिर उसमें कोपल चढ़ाने का कार्य करना चाहिए। जून से अगस्त तक बेर के पौधे से निकले कल्लों को मूलवृन्त कहा जाता है जिन पर आँख चढाई जाती है। कल्ले निकलने के स्थान से 25–30 सेमी. की ऊँचाई पर तेज चाकू की सहायता से उपर के भाग को काटकर अलग कर देते हैं उसमें काँटे व पत्तियाँ चाकू की सहायता से हटा देते हैं। चाकू की सहायता से मूलवृन्त पर 15–20 सेमी. की ऊँचाई पर 2 से 2.5 सेमी. लम्बाई का चीरा अंग्रेजी अक्षर आई या टी या उल्टी टी आकार का चीरा मूलवृन्त पर लगा देते हैं फिर चाकू की मदद से छाल को ढीला कर लेते हैं तथा इसी आकार की शाखवृन्त (मातृ पौधे) से 2 से 2.5 सेमी. लम्बाई की आँख (कोपल) निकाल कर मूलवृन्त में प्रविष्ठ करवा देते हैं और प्लास्टिक की पटटी से आँख छोडकर बाँध देते हैं। 5–6 दिन बाद वहाँ से कोपल निकलना शुरू हो जाती है। इस प्रकार देशी बेर के पौधों को वानस्पतिक प्रसारण के द्वारा उन्नत किस्म के पौधों में परिवर्तित कर सकते हैं और उन्नत किस्म के अच्छी गुणवत्ता वाले फल प्राप्त कर सकते हैं, जो शुष्क क्षेत्र में किसानों की आय का स्त्रोत बनाकर आर्थिक समृद्धि प्रदान कर सकते हैं।

शुष्क क्षेत्र के लिए उपयुक्त प्रजातियाँ

गोला, सेव, उमरान, मुडिया व इलायची इत्यादि।

चित्र-1 देशी बेर को शिराहीन करके तैयार उन्नत किस्म का बेर का पौधा

शाख (आँख या कोपल) का चुनाव

अच्छी पैदावार लेने के लिए उन्नत किस्म की शाख (आँख या कोपल) का होना अति आवश्यक है। शाख उन्नत किस्म की लेने के लिए किसान के यहाँ लगे उन्नत किस्म के बेर के बगीचे से, कृषि अनुसंधान केन्द्र, कृषि विश्व विद्यालय के उद्यान विभाग, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर व कृषि विज्ञान केन्द्र, जोधपुर, पाली बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर इत्यादि से प्राप्त किये जा सकते हैं।

कलिकायन (बडिंग) करते समय ध्यान रखने योग्य बातें

1. कलिकायन के लिए शाख (आँख या कोपल) लेने वाले पौधे अच्छी किस्म, गुणवत्ता व अधिक पैदावार देने वाले होने चाहिए। बागवान को पैतृक वृक्ष की जानकारी भली भाँति होनी चाहिए।
2. बडिंग करने का उचित समय जून से अगस्त तक ही है। इस समय कोपलें भी अधिक मिलती हैं और आँखें लगाने पर अधिक सफल होती हैं इसलिए समय का जरूर ध्यान रखना चाहिए।
3. मौसम को ध्यान में रखकर वानस्पतिक प्रर्वधन का कार्य करना चाहिए। कलिकायन करते समय वर्षा न हो रही हो तथा वायु मण्डल में आर्द्रता हो और मौसम साफ हो, तो प्रसारण में 75–80 प्रतिशत सफलता मिलती है।
4. मूलवृन्त में चीरा लगाने के पश्चात् छाल को ढीला करते समय बार–बार चाकू को छाल के भीतर नहीं रगड़ना चाहिए। ऐसा करने में उसके अन्दर घाव हो जाता है और कोपल लगाने में कम सफलता मिलती है।
5. कोपल को छोड़कर बाकी सभी बडिंग किये हुए स्थान को प्लास्टिक की पट्टी से कस कर बाँध देना चाहिए।
6. कोपल की वृद्धि के पश्चात् फालतू उगी हुई शाखाओं को समय–समय पर काटते रहना चाहिए। जिससे कोपल को पूर्ण मात्रा में भोजन मिल सके।
7. नई–नई कोमल कोपलों पर हानिकारक कीड़ों का प्रकोप अधिक होता है इसलिए कीटनाशक दवा जैसे मोनोक्रोटोफास 36 एस एल या कार्बोरिल 50 डब्लू पी का छिड़काव समय–समय पर अवश्य ही करना चाहिए।
8. आँख की बढ़वार के समय अगर वर्षा न हो रही हो तो सिंचाई करनी चाहिए।
9. पेड़ के चारों तरफ निराई–गुड़ाई करके मिट्टी को भुरभुरी कर देनी चाहिए।

इस प्रकार किसान भाई अपने खेतों पर देशी बेर के पौधों में तकनीक अपनाकर उन्नत किस्म के पौधों में परिवर्तित करके अधिक से अधिक पैदावार लेकर अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत कर सकते हैं।

कुमट : एक गोंद उत्पादक वृक्ष

आर.पी. सिंह, एस.के. शर्मा एवं मनीष चौधरी
कृषि विज्ञान केन्द्र, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

कुमट (अकेसिया सेनेगल) मुख्यतया राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात के अलावा हरियाणा के असिंचित क्षेत्रों में पाया जाने वाला बहु–उपयोगी वृक्ष हैं। इस वृक्ष से प्राप्त गोंद के औषधीय गुणों से सभी अच्छी तरह से परिचित हैं, इन्हीं गुणों के कारण बाजार में अन्य वृक्षों से प्राप्त गोंद की तुलना में इसके गोंद की अच्छी कीमत मिलती है। इसके बीजों का उपयोग सब्जी बनाने में किया जाता है। सूखी पत्तियाँ झड़ने पर भेड़ व बकरियों के चारे के रूप में तथा हरी अवस्था में पेड़ों पर से ऊँट आदि जानवरों द्वारा चारे के रूप में काम आती हैं। इस वृक्ष की शाखाऐं घनी एवं काँटेदार होने से खेत के चारों और बाड़ के रूप में तथा मोटी टहनियों का उपयोग कृषि औजारों के हत्थे आदि बनाने में किया जाता है।

किसान भाई साधारणतया कुमट वृक्ष पर कुल्हाड़ी से 'घाव' कर प्राकृतिक रूप से प्राप्त होने वाले गोंद उत्पादन को कुछ बढ़ा लेते है, पर इससे पेड़ों को नुकसान ज्यादा होता हैं। प्राकृतिक रूप से कुमट की प्रति वृक्ष गोंद उत्पादन की मात्रा 25 से 50 ग्राम है, इससे किसान भाई इससे प्राप्त पैदावार की तरफ ध्यान नहीं देते। इस के औषधीय उपयोग के अलावा कुमट का गोंद वस्त्र, कागज उद्योग, सौन्दर्य सामग्री व मिठाई आदि बनाने में भी उपयोग किया जाता है। अतः इसकी मांग को पूरा करने के लिए अन्य देशों से गोंद का आयात करना पड़ता है।

गोंद का अधिक उत्पादन

कुमट के वृक्षों से गोंद की अधिकतम पैदावार लेने के लिए किसान भाई अपने खेतों पर लगे कुमट के वृक्षों को काजरी (केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान) द्वारा विकसित नवीन तकनीकी द्वारा उपचारित कर प्रति वृक्ष 500 ग्राम तक गोंद का उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

कुमट वृक्षों का चयन: कुमट वृक्षों के चयन का उद्देश्य यही है कि किसान भाई उन वृक्षों को उपचारित करने में प्राथमिकता दें, जिन वृक्षों से प्राप्कृतिक रूप से गोंद उत्पादन मिल रहा हो व उसके बाद अन्य वृक्षों का उपचार करें।

- कुमट के वृक्षों को गोंद उत्पादन हेतु उपचारित करने के लिए 8 वर्ष तथा इससे बड़े वृक्षों का चयन करें।
- जल स्त्रोतों, जलग्रहण क्षेत्रों अथवा जहां प्राकृतिक रूप से वर्षा जल जमा होता हो, वहां लगे वृक्षों से अधिकतम गोंद प्राप्त होता है। अतः सर्वप्रथम उपचार हेतु इस प्रकार के वृक्षों का चयन करें।

वृक्षों की उपचार अवस्था

राजस्थान में साधारणतया कुमट के वृक्षों पर अक्टूबर–नवम्बर माह तक फलियाँ (पापड़ी) पक जाती हैं जिन्हें साधारण तथा लम्बे बांस (जिसमें हुक लगा हो) द्वारा झाड़कर इकट्ठा कर लेते हैं। 5–10 दिन धूप में सुखाकर बीजों को फलियों से अलग करने के लिए, हल्के डंडे से पीट कर अलग कर लेते हैं। मार्च माह तक पत्तियां भी पक कर गिर जाती हैं इस माह सें साधारणतया तापमान व वायु में खुश्की भी बढ़ने लगती है। कुमट के वृक्षों को उपचारित करने की उचित अवस्था यही हैं। राजस्थान में मार्च से मई माह की अवधि कुमट वृक्षों के उपचार के लिए उपयुक्त समय है।

उपचार-विधि:

उपचार के लिए वृक्षों के चयन के पश्चात् उपरोक्त वर्णित अवधि में चयनित वृक्षों में निम्नलिखित विधि से उपचार प्रक्रिया करें:

- चयनित वृक्ष के मुख्य तने में जमीन से 1 से 1.5 फीट ऊँचाई पर यदि उपलब्ध हो तो हाथ द्वारा चलित ''हैंड ड्रिल'' अथवा गांव में सुथार के काम में आने वाले गिरमिट से तने में आधा ईंच (1.2 से.मी) व्यास का तथा दो ईंच (5 से.मी.) गहरा तिरछा छेद करें।
- तने में उपयुक्त आकार का छेद करने के बाद उसमें सिरिंज की सहायता से, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा उपलब्ध कराये निश्चित सान्द्रता के द्रव उत्प्रेरक की 4 मिलीलीटर मात्रा डाल दें।
- दवा को तने के छेद में डालने के पश्चात् तालाब की चिकनी छनी मिट्टी को आटे की तरह गोंद कर रखी इस गीली मिट्टी से 3 ईंच व्यास की पतली टिकिया बनाकर छेद पर रखकर टिकिया के किनारे को चारों ओर से अंगूठे की सहायता से तने पर दबाकर चिपका दें। परन्तु टिकिया के बीच के भाग की उठा रहने दें।

गोंद का स्त्राव

वृक्षों के उपचार के 5–6 दिन पश्चात् गोंद का स्त्राव वृक्ष की टहनियों पर दिखाई देने लगता है। वृक्षों पर आये गोंद को उपचार के 25–30 दिन बाद, वृक्ष के नीचे कपड़ा बिछाकर लम्बे बांस की सहायता से धकेलकर गिरा लें। इस प्रकार गोंद तोड़ने के बाद फिर गोंद आने लगता हैं। वृक्ष की आयु, आकार व स्थान के अनुसार 2 से 3 बार गोंद प्राप्त होता है। इस गोंद को काजरी वैज्ञानिकों ने ''फार्मकोपिया ऑफ इण्डिया'' में वर्णित ''भारतीय गोंद'' के अनुरूप पाया हैं।

वर्षा आधारित खेती व सिंचित क्षेत्र दोनों पर निर्भर किसान भाई इस तकनीक को अपने क्षेत्र में लगे वृक्षों पर अपनाकर गोंद उत्पादन को ''नगदी–फसल'' के रूप में ले सकते हैं। इससे कृषि से होने वाली आय का एक अतिरिक्त स्त्रोत भी हो जायेगा व कुमट वृक्ष की पहचान केवल कुमट बीज (कुमटिया) के स्थान पर गोंद उत्पादक वृक्ष के रूप में स्थापित होने से इस वृक्ष के संरक्षण व नवीन पौधों के रोपण में भी वृद्धि होगी ।

इन बातों का ध्यान रखें:

- उपचार हेतु 8 वर्ष या अधिक बड़े वृक्षों का चुनाव करें।
- उपचार फलियाँ पकने तथा पत्तियां गिर जाने के पश्चात् करें।
- उपचार के दिनों में तापमान बढ़ रहा हो, अचानक वर्षा आ जाने अथवा ठण्ड से तापमान गिर जाने पर उपचार सप्ताह भर ठहर कर करें इससे तापमान में भी सुधार हो जायेगा व हवा में नमी भी कम हो जायेगी ।
- वृक्ष में छेद करते समय काला भूरा सा बुरादा आने लगे तो छेद करने का स्थान बदल दें। क्योंकि यह वृक्ष के तने के अन्दर के मृत (कीरी) भाग हैं। इन भागों में दवा छोड़ने पर दवा का वृक्ष में संचरण नहीं होने से उत्साहजनक परिणाम नहीं मिलते।
- छिद्र का आकार आधा ईंच व गहराई दो ईंच से कम होने पर दवा छिद्र में उपर तक आ जाती है। इससे छिद्र का मुंह गीली चिकनी मिट्टी से बन्द करते समय दवा गीली मिट्टी के सम्पर्क में आ जाती है, रसायनिक क्रिया के कारण बुलबुले बनने लगते हैं व काफी मात्रा में दवा बाहर आ जाने से पूरा उत्पादन नहीं मिलता अतः छेद के आकार व गहराई का ध्यान रखें।
- विशेष रूप से ध्यान रखें कि उपचारित वृक्ष पर गोंद निकलने के लिए कुल्हाड़ी से किसी प्रकार का घाव नहीं लगायें अन्यथा इन घावों से गोंद स्त्राव तेजी से बाहर आता है जिससे सूखने का पर्याप्त समय नहीं मिलता और तने व डालियों पर बहने लगता हैं। अतः गोंद स्त्राव को प्राकृतिक रूप से धीरे–धीरे बाहर आने दें जिसे वह ढ़ेलों के आकार में सूखकर जमा होता रहेगा व बाजार में बेचना भी आसान होगा।

विशेष

कुमट वृक्ष का उपचार एक वर्ष में एक बार ही किया जाता है तथा उपचार के लिए उत्प्रेरक दस रूपये प्रति चार मिलीलीटर (प्रति वृक्ष हेतु) की दर से 'काजरी' में संसाधन विकास प्रबन्धन (विभाग द्वितीय) में या एटिक काउण्टर से सम्पर्क कर प्राप्त कर सकते हैं। किसी भी प्रकार की समस्या के समाधान हेतु कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, जोधपुर से टेलीफोन नम्बर 0291–2741907 पर सम्पर्क कर सकते हैं।

कम्पोस्ट खाद का महत्व व बनाने की तकनीक

आर.पी. सिंह एवं मनीष चौधरी
कृषि विज्ञान केन्द्र, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के 70 प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं। कृषि और इससे जुड़े अन्य कार्य जैसे पशुपालन, लघु उद्योग व अन्य स्वरोजगार कार्य गाँवों में किये जाते हैं। गांवों के किसानों की मुख्य समस्या आर्थिक कमजोरी है ।

आचार्य विनोबा भावे ने कहा है कि भारतीय गांवों को जीवित देखना चाहते हो तो गांव एवं कृषि का विकास होना जरूरी है। कम्पोस्ट खाद बनाकर खेतों में डालने से खेतों की उपजाऊ क्षमता बढ़ती हैं। फसलों की अधिक उपज हासिल होने से किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी और उनकी भूमि का भी सुधार होगा।

कम्पोस्ट खाद के मुख्य लाभ :

1. कम्पोस्ट खाद में दीमक नहीं लगती है।
2. खरपतवार के बीजों की अंकुरण शक्ति नष्ट हो जाती है।
3. फसलों के हानिकारक कीट की क्षमता कम हो जाती है।
4. गोबर की साधारण खाद की अपेक्षा कम्पोस्ट खाद खेत में डालने से फसलों की उपज में डेढ़ गुणा वृद्धि हो सकती है ।
5. खेत की मिट्टी मुलायम तथा ढेले आसानी से टूटने लगते हैं ।
6. फसल को सभी पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धि होती है।
7. मिट्टी की पानी रोकने की क्षमता में वृद्धि होती है ।
8. रेतीली मिट्टी के कणों को पकड़कर रखने की ताकत बढ़ती है ।
9. वायु और नमी का संतुलन बनाए रखने में सहायक हैं।
10. कम्पोस्ट खाद खेत में डालने से रासायनिक उर्वरकों की कम आवश्यकता होती है ।

कम्पोस्ट खाद तैयार करने के लिए आवश्यक सामग्री

पशुओं से प्राप्त :
- गाय तथा भैंस का गोबर एवं मूत्र
- बकरी एवं भेड़ की मींगणी एवं मूत्र

फसल से प्राप्त :
- बाजरा, मोठ, तिल, ग्वार, मूंग, सरसों आदि फसलों का कचरा
- घास तथा पेड़ों की पत्तियाँ
- जानवरों के बाड़े का कचरा
- जीरे का कचरा कम्पोस्ट बनाने में काम में न लें क्योंकि जीरे में फफूँद वाले रोग अधिक मात्रा में आते हैं। जीरे का कचरा काम में लेने से कम्पोस्ट खाद भी रोग ग्रस्त हो जायेगा। इससे हमारे खेत भी रोग ग्रस्त हो जायेंगे।

कम्पोस्ट खाद बनाने की विधि

1. जानवरों के बाड़े के पास थोड़ी ऊँचाई वाले स्थान पर 10 फीट लम्बा, 5 फीट चौड़ा तथा 3 फीट गहरा गड्ढा बनाएं ।
2. अगर कच्चा गड्ढा हो तब पतले गोबर एवं मिट्टी के मिश्रण का एक इंच मोटाई का अंदरूनी क्षेत्र पर लेप करें ।
3. गोबर एवं बकरी, भेड़ की मींगणी तथा उपलब्ध कचरा गड्ढे के पास अलग–अलग इकट्ठा करें ।
4. सर्वप्रथम उपलब्ध फसल के कचरे तथा बाड़े के मूत्र से भीगे कचरे को गड्ढे में 1/2 फीट की तह दबाकर भरें ।
5. कचरे की तह पर गोबर 1/2 फीट भर दें।
6. गोबर की तह पर 15–20 बाल्टी पानी छिड़काव करें ।
7. इसी तरह गोबर की तह पर कचरे की तह 1/2 फीट, बाद में गोबर की तह 1/2 फीट भर दें साथ में ऊपर बताई गयी मात्रा से पानी का छिड़काव करें ।
8. जमीन की सतह से 1 फीट ऊपर तक गड्ढ़ा पूरा भरने के बाद 25–30 बाल्टी पानी चारों तरफ से छिड़काव करें ।
9. गड्ढे के चारों कोनों में छेद बनाकर प्रत्येक छेद में 15 बाल्टी पानी डालकर छेद बंद कर दें।
10. 5– 6 दिन बाद गड्ढ़े की सतह जमीन की सतह तक हो जाती है ।

11. गड्ढ़े पर जमीन की सतह से 1 फीट ऊपर तक मिट्टी डाल दें ।
12. गोबर एवं मिट्टी की समान मात्रा का लेप बनाकर गड्ढ़े के ऊपर कर दें ताकि गड्ढ़े में नमी व तापक्रम बना रहें तथा अन्दर से गैस भी बाहर न आये।
13. एक गड्ढा भरने के बाद दूसरे गड्ढे में भी इसी प्रकार कम्पोस्ट खाद बनायें।
14. एक गड़ढे में भराई के बाद चार महीने में कम्पोस्ट खाद तैयार हो जाता है।
15. कम्पोस्ट खाद को जब खेतों में डालना हो तभी खाद को निकाल कर खेत में डालें तथा जुताई कर खाद को मिट्टी में मिला दें अन्यथा उसमें मौजूद नत्रजन हवा मे मिल जाती है।
16. कम्पोस्ट खाद 5–6 टन प्रति हेक्टेयर खेत में बिखेर कर मिट्टी में मिला दें। फलदार वृक्षों में 10–20 कि.ग्रा. खाद प्रति वृक्ष दें ।

कम्पोस्ट खाद में अनुमानित पोषक तत्व

- नत्रजन : 0.40 से 0.60 प्रतिशत
- फास्फोरस : 0.40 से 0.50 प्रतिशत
- पोटाश : 0.35 से 0.50 प्रतिशत

इसके अतिरिक्त इसमें कैल्शियम, गन्धक, जस्ता, तांबा, लोहा, मैगनीज आदि भी मौजूद होते हैं। अतः यह भूमि की उर्वरा–शक्ति बनाये रखने के साथ–साथ रासायनिक खादों की कार्य क्षमता भी बढ़ाता है।

शुष्क क्षेत्र में जैविक कृषि

अरुण कुमार शर्मा
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

जैविक कृषि

रसायनिक उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवार नाशक आदि का प्रयोग न करके, स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक व प्राकृतिक संसाधनों जैसे पशु अपशिष्ट, फसल अवशेष, वर्षा जल इत्यादि के सदुपयोग व प्रकृति मित्र तकनीकों से फसल का पोषण व रक्षण प्रबन्धन करने को जैविक कृषि कहते हैं। इसमें जैविक खाद, जैव कीट नियंत्रक, फसल चक्र, मल्चिंग आदि का प्रयोग किया जाता है। जैविक खेती में भूमि की उर्वरकता को जैव विधियों जैसे जैविक खाद, हरी खाद, फसल चक्र आदि से निरंतर बनाये रखने के तरीके अपनाये जाते है, साथ ही नीम आदि कीटनाशक गुणों वाले पौधों के उत्पादों व मित्र कीट, सूक्ष्म जीवों का प्रयोग कर रोग–कीटों का नियंत्रण किया जाता है।

जैविक कृषि की आवश्यकता

जैविक विधि से उत्पादित्त फसलों की विश्व बाजार में बहुत मांग है। यूरोप व अमेरिका में फाइटो सेनेटरी कानून सख्ती से लागू होने के कारण भविष्य में फसलों के रसायन अवशेषयुक्त उत्पाद का निर्यात लगभग असंभव हो जायेगा। अतः शुष्क क्षेत्रों की फसलों का जैविक विधि से उत्पादन करने पर न केवल निश्चित बाजार मिलेगा वरन् स्थानीय संसाधनों का सदुपयोग भी संभव होगा।

शुष्क क्षेत्र में जैविक कृषि

शुष्क क्षेत्र में जैविक कृषि हो सकती है, और ये क्षेत्र इसके लिये अनुकूल हैं क्योंकिः

1. पशु आधारित कृषि व्यवस्था होने से जैविक खाद की पर्याप्त उपलब्धता।
2. रसायनिक उर्वरक व कीटनाशकों का बहुत कम प्रयोग होने से भूमि में अवशेष न्यूनतम, अतः जैविक रूपान्तरण में सुविधा।
3. जैविक खाद, खरपतवार की पलवार (मल्चिंग) आदि का जल संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान।
4. जैविक कीट नियन्त्रक जैसे नीम, आक, धतूरा की पर्याप्त मात्र में उपलब्धता।
5. पारंपरिक कृषि पद्धति का वर्तमान में भी अस्तित्व में होना, जिससे संसाधनों का संरक्षण व पुनर्चक्रण सुनिश्चित किया जाता है।
6. निर्यात मांग वाली कुछ विशेष उच्चमूल्य वाली फसलें जिनका उत्पादन शुष्क क्षेत्र में ही होता है जैसे जीरा, ग्वार, ईसबगोल, अजवायन आदि।

जैविक कृषि में उपयोगी तकनीक

जैविक कृषि में निम्न तकनीकों का समन्वित उपयोग किया जाता है।

1. फसलें व फसल चक्र : शुष्क क्षेत्र में मुख्यतः बाजरा, ग्वार, मोठ, तिल व मसाले वाली फसलों का उत्पादन होता है। इनमें से अधिकांश फसलें ऐसी हैं जिनका गुणवत्तायुक्त उत्पादन सिर्फ शुष्क जलवायु में ही संभव है जैसे जीरा, ईसबगोल आदि। फसल चक्र में दलहन जैसे ग्वार, मोठ, मूँग को अवश्य ही शामिल करना चाहिए ताकि मृदा की उर्वरता बनी रहे। रबी में जीरा, ईसबगोल व रायड़ा को फसल चक्र में इस प्रकार शामिल करना चाहिए जिससे की जीरा एक खेत या खेत के एक ही भाग पर लगातार दो वर्ष तक उत्पादित न हो अर्थात जीरा के बाद रायड़ा या ईसबगोल का फसल चक्र अपनाना चाहिए ।

2. पोषण प्रबंधन : शुष्क क्षेत्रों में जहां खाद तैयार करने के लिये 4–6 महीने का समय मिल जाता है वहाँ पशु मल व फसल अवशेष से भूमि के नीचे गड्ढे में खाद बनाना उचित रहता है। खाद को बुवाई से 7–10 दिन पूर्व खेत में मिला देते हैं। सिंचित फसलों में 8–10 टन व बारानी फसलों में 5–6 टन खाद/हैक्टर/वर्ष प्रयोग करना ठीक रहता है। जल की मात्रा व गुणवत्ता में कमी, वातावरण में शुष्कता व तापमान में उतार–चढ़ाव के कारण शुष्क क्षेत्र में केंचुआ खाद निर्माण व्यवहारिक नहीं पाया गया है।

3. खरपतवार नियन्त्रण : खरपतवार मुख्यतः कच्ची खाद में आये बीजों से व समय पर निराई गुडाई नहीं करने से पनपते हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिये पकी हुई जैविक खाद व साफ बीज का प्रयोग करना चाहिए। खेत में उगे खरपतवारों को हाथ से उखाड़कर फसल की पंक्तियों के बीच मल्च के रूप में बिछा देना चाहिए। इससे न केवल खरपतवार नियन्त्रण होता है वरन् भूमि सतह ढक जाने से नमी संरक्षण व बाद में खरपतवार के सड़–गल जाने से भूमि को जीवांश (लगभग 2.0–2.5 टन/है) भी मिल जाता है। पहली निराई–गुडाई फसल बुवाई के 20–25 दिन बाद व दूसरी 40–45 दिन बाद अवश्य कर देनी चाहिए।

4. रोग–कीट नियंत्रण : रोग–कीट नियंत्रण के लिये निम्न उपायों का समन्वित प्रयोग करना चाहिए :

1. स्वस्थ, रोग–कीट रहित बीज का चयन कर 4–6 ग्राम ट्राइकोडरमा पाऊडर से प्रति कि.ग्रा. बीज को उपचारित कर बुवाई करनी चाहिए।
2. अच्छी पकी हुई जैविक खाद का प्रयोग 5.0 टन प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि तैयारी के समय करना चाहिए ।
3. खेत के आसपास या गाँव में उपलब्ध नीम के वृक्षों की पकी हुई निम्बोली पानी में भिगोकर उसका छिलका उतार देना चाहिए व गुठली को सुखाने के पश्चात कूटकर 150 से 200 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर से जुताई के समय मृदा में मिला देना चाहिए।
4. खेत में कीट प्रजाति के अनुसार फेरोमोन ट्रेप का प्रयोग करना चाहिए (मूल्य रूपये 150–200/– प्रति है.)।
5. खेत में प्रतिदिन निरीक्षण करना चाहिए तथा रोग–कीट की शुरूआत होने पर नीम बीज गिरी का 5.0 प्रतिशत जल घोल का सायंकाल छिड़काव करना चाहिए ।
6. खेत की बाड़ व बीच में पंक्तियों में कई प्रकार के फूलदार वृक्ष–झाड़ी लगाने चाहिए, जिससे फसल के लिये लाभकारी कीटों को आश्रय व भोजन मिलता रहे। खेत की बाड़ पर कुछ वृक्ष नीम के भी लगाने चाहिए ताकि जैविक कीट नियंत्रक बनाने हेतु निम्बोली मिल सके।

दलहनी व तिलहनी फसलों में पौध संरक्षण

ऋतु मावर, ए.एस. तोमर, आर.के. भट्ट एवं एस.के. शर्मा
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कृषि की दृष्टि से आजकल शुष्क क्षेत्रों को महत्ता दी जा रही है। इन क्षेत्रों में बाजरा, ज्वार, मोठ, ग्वार, मूंग, आदि फसलों का उत्पादन होता है। लगभग 50 प्रतिशत फसलों को नुकसान भूमि जनित रोगों जैसे जड़गलन, बीज गलन, उखटा रोगों से होता है। फसलों में लगे इन रोगों के कारण पैदावार घट जाती है। बीज जनित तथा भूमि जनित रोग मेक्रोफोमिना फेजीयोलीना, फ्यूजेरियम, गेनोडर्मा व राइजोक्टोनिया आदि फंफूदो से होते हैं। इन वर्षों में ऐसे अनेकानेक तरीके विकसित किये गये हैं, जिनके प्रयोग से उपयुक्त समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। फसलचक्र, भूमि सौरीकरण, जैविक नियंत्रण, गर्मी की जुताई, प्रतिरोधक किस्में, रासायनिक विधि के इस्तेमाल से इन समस्याओं से मुक्ति पायी जा सकती है। रासायनिक विधि के अधिक प्रयोग से किसानों को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। रासायनिक विधि के विकल्प के रूप में जैविक विधियों का उपयोग किया जा सकता है। फसलों में होने वाले रोग व उनकी रोकथाम के बारे में कृषकों तथा कृषि से जुड़े प्रसार कार्यकर्त्ताओं को जानकारी होना आवश्यक है।

ग्वार

ग्वार शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्रों में खरीफ में ली जाने वाली एक प्रमुख फसल है। जमीन में नत्रजन को स्थिर करने वाली यह फसल भारत में करीब 23 लाख हेक्टेयर में लगाई जाती है, जिसमें राजस्थान का करीब 80 प्रतिशत हिस्सा है। इसके अलावा गुजरात, हरियाणा व पंजाब में भी इसकी खेती की जाती है। राजस्थान हालांकि पूरे देश का 80 प्रतिशत क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है, परन्तु इसकी उत्पादन क्षमता अन्य राज्यों के मुकाबले काफी कम है। अच्छे रोग व व्याधि प्रबन्धन से ग्वार की उत्पादन क्षमता प्रति हेक्टेयर बढ़ाई जा सकती है।

शाकाणु झुलसा (बेक्टीरीयल ब्लाईट): यह रोग ग्वार की खेती करने वाले सभी क्षेत्रों में होता है। भारत के अलावा अन्य देशों में भी यह रोग ग्वार को काफी नुकसान पहुँचाता है। उग्र अवस्था में इस रोग से 45 से 50 प्रतिशत तक उपज कम हो जाती है। यह रोग जेन्थोमोनास एकजोनोपोडीस पेथोवार साईमोप्सिडिस नामक शाकाणु से होता है। यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है। प्रारम्भ में पत्तियों के दोनों तरफ शिराओं के मध्य छोटे–बड़े गोल चिपचिपे धब्बे देखे जा सकते हैं, जो अनूकुल वातावरण मिलने पर एक दूसरे में मिलकर पत्तियों को झुलसा देते हैं। पत्तियां समय से पहले गिर जाती हैं। उग्र अवस्था में तने पर लम्बाकार धारियां दिखाई देती हैं, जिससे तना काला पड़ जाता है। पौधे पर फलियां कम लगती हैं व

इनमें दाने भी कम हो जाते हैं। यह रोग छुटपुट वर्षा में अधिक आर्द्रता मे ज्यादा फैलता हैं। रोग के जीवाणु बीज के माध्यम से एक से दूसरे वर्ष में प्रसारित होते है। एक बार पौधों की पत्तियों पर लगने के बाद वर्षा के छीटों आदि से यह रोग स्वस्थ पौधों में तेजी से फैलता है। पौधों की एक माह की अवस्था सबसे नाजुक होती है।

रोकथाम: खेत में रोग रोधी या रोग सहनशील किस्में लगानी चाहिए। आर.जी.सी. 986, आर.जी.सी. 1002 आदि प्रमुख रोग रोधी किस्में हैं। स्वस्थ बीजों को बोने के काम में लेने चाहिए। बीजों को स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 0.025 प्रतिशत से उपचारित करके बोना चाहिए । आठ लीटर पानी में 2 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन घोल कर बीजों को 2 घंटे तक डुबाकर निकालने के बाद छाया में सुखाकर बोना चाहिए। रोग फैलने के लिये अनुकूल मौसम होने पर 10 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 100 लीटर पानी (0.01 प्रतिशत) में मिलाकर छिड़कना चाहिए। उग्र अवस्था हो तो दूसरा छिड़काव 15 दिन के पश्चात् करना चाहिए। खेत में पिछले वर्ष का कचरा नहीं छोड़ना चाहिए।

शुष्क जड़ गलन (ड्राई रूट रोट): यह रोग भूमि व बीज दोनों ही तरीकों से फैलता है। इसका प्रकोप कम वर्षा या दो वर्षा के बीच में लम्बा अन्तराल होने पर ज्यादा होता है। रोग की उग्र अवस्था में 40 से 50 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। मुरझाए पौधों व हल्के भूरे रंग के तनों के रूप में इस रोग की पहचान हो सकती हैं। ऐसे पौधे आसानी से उखाड़े जा सकते हैं। रोगग्रस्त पौधों पर फलियां नहीं लगती तथा जड़ों में नत्रजन सचंय करने वाली ग्रन्थियाँ नही बनती हैं।

रोकथाम: दलहनी फसलों जैसे मूंग, मोठ व ग्वार में जड़ गलन रोग नियंत्रण हेतु बुवाई से पहले एक कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा मित्र फँफूद को 40 कि.ग्रा. गोबर की खाद के साथ मिलाकर मिट्टी में मिलाएं। बीज को 3 ग्राम थाईरम या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम व 4 ग्राम ट्राईकोडरमा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। मूंग में सूखा जड़ गलन नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू पी 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. दर से बीजोपचार के पश्चात् बुवाई करें। फसलचक्र में बाजरा लेने से दूसरे वर्ष रोग कम होता है। जल्दी पकने वाली किस्मों को बोना चाहिए। पौधों की कतारों के बीच में खेत में नहीं काम आने वाले पौधों के अवशेषों की पलटना एवं मिंगनी की खाद मिलाना आदि उपयोगी है। सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्र में जहाँ रबी की फसल भी ली जाती है, 2.5 टन सरसों की फसल के अवशेषों व आधा टन सरसों की खली मिलाकर मई महीने में खेत में डालनी चाहिए व तेज गर्मी के समय एक पानी देना चाहिए। तेज गर्मी में सरसों के कचरे के सड़ने पर जो गैसें उत्पन्न होती हैं, वे इस रोग की फफूंद को काफी हद तक नष्ट कर देती हैं। सिंचाई की सुविधा कम होने पर बुवाई से पहले कम्पोस्ट खाद 4 टन प्रति हेक्टेयर मिलाने से भी रोग कम हो जाता है।

पत्ती धब्बा (अल्टनेरिया लीफ स्पोट): यह रोग फफूंद से होता है। पत्तों पर छोटे–छोटे गहरे भूरे रंग के गोल या आसमानी धब्बे होते हैं, जो गोलाकार छल्लों का रूप लेते हैं, आर्द्र मौसम में फैलकर पत्ती के ज्यादातर भाग को झुलसा देते हैं। रोग की उग्र अवस्था में फलियां कम लगती हैं व दानों का आकार छोटा होता है। यह रोग बीजों द्वारा फैलता है।

रोकथाम: रोगरहित क्षेत्रों से उत्पन्न बीजों को काम में लेने से इस रोग की रोकथाम हो सकती है। रोग सहनशील किस्में जैसे एच.जी.एस. 365, आर.जी.सी. 986 आदि बोनी चाहिए। रोग के लक्षण दिखते ही कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) को स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 200 पीपीएम 4 लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। इस प्रकार शाकाणु झुलसा व पत्ती धब्बा रोगों का एक साथ उपचार किया जा सकता है।

छाछ्या (पाउडरी मिल्ड्यू): यह रोग ओइडोपसिस टाऊरिका नामक फफूंद से होता है। राजस्थान के मरू क्षेत्रों में इसकी शुरूआत फसल के पकने के कुछ ही समय पूर्व होती है। यह रोग सिर्फ पत्तियों पर ही आक्रमण करता है। पत्तियों पर गहरे सफेद रंग के धब्बे हो जाते हैं जो निचली सतह पर अधिक होते हैं। उष्ण तापक्रम (35 से.), कम आर्द्रता (50 प्रतिशत) व तेज धूप इसके फैलने में सहायक होते हैं। रोग की उग्र अवस्था में पत्तियां जल्दी गिर जाती हैं।

रोकथाम: गन्धक युक्त फफूंद नाशक (0.2 प्रतिशत) दवा का छिड़काव सबसे प्रभावकारी व सस्ता है। डिनोकेप, ट्राईड्रीमोर्फ, आदि का छिड़काव (0.1 प्रतिशत) भी काफी प्रभावशाली रहता है। स्ट्रेप्टोसाइकलीन (0.01 प्रतिशत) व डिनोकेप (0.01 प्रतिशत) का सम्मिलित छिड़काव जीवाणु झुलसा व छाछया के लिये काफी प्रभावकारी है जिससे पानी की बचत भी होती है।

इन प्रमुख रोगों के अलावा ग्वार को कुछ पत्ती धब्बा रोगों से भी नुकसान पहुंचता है, जिनमें सरकोस्पोरा, मिरोथिसियम, करवुलेरिया व कोलीटोट्राईकम प्रमुख हैं। मौसम की अनुकूलता से ये धब्बे फसल की एक माह की अवस्था में देखे जा सकते हैं। उग्र अवस्था में ही ये ग्वार को अधिक नुकसान पहुंचा पाते हैं। इनकी रोकथाम मेन्कोजेब या कापर आकसीक्लारोराईड़ (0.2 प्रतिशत) के एक छिड़काव से की जा सकती है।

मूंग

मूंग दलहनी फसलों में प्रमुख दाल है जो इस देश की शाकाहारी जनता का प्रमुख प्रोटीन का स्रोत हैं। हमारे देश में यह करीब 40 लाख हेक्टेयर में लगाई जाती है। राजस्थान में इसकी खेती 12 लाख हेक्टेयर में की जाती है। राज्य में मूंग के सकल क्षेत्रफल का 70 प्रतिशत शुष्क क्षेत्र में पाया जाता है। कम समय में पकने वाली व अधिक लाभ देने की वजह से आजकल शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्रों में भी इस फसल की खेती काफी लोकप्रिय हो रही है। उन्नत तकनीकी के प्रयोग से मूंग की पैदावार को 20 से 50 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है।

पीतशिरा मोजेक (येलो मोजेक): यह रोग सभी मूंग की खेती वाले क्षेत्रों में लगता है। इसकी शुरूआत नई पत्तियों में बिखरी हुई पीली–पीली धारियों के रूप में हरी पत्तियों पर होती है। अगली तीन पत्तियों में हरी व पीली धारियाँ एक मोजेक का रूप ले लेती हैं। कई बार हरे रंग में उठाव आने की वजह से पत्तियां मुड़ी हुई सी दिखाई देती हैं। उग्र अवस्था में पूरी की पूरी पत्तियां ही पीली हो जाती हैं। रोग ग्रस्त पौधे अधिकतर देर

से पकते हैं व उन पर फूल व फलियां भी कम आती हैं। यह रोग एक विषाणु से उत्पन्न होता है व एक मक्खी बेमीसियां टेबेसाई से फैलता है। कुछ खरपतवारों पर भी यह रोग लगता है जिससे यह मूंग की फसल में और ज्यादा फैलता है। अरहर की फसल इस रोग के विषाणु व फैलाने वाले कीड़े को जिन्दा रखने में काफी सहायक होती है। इस रोग से 10 प्रतिशत तक नुकसान देखा गया है। जायद फसल में इसका प्रकोप खरीफ फसल से अधिक होता है।

रोकथाम: रोग रोधक किस्मों जैसे पी.डी.एम.–5 आदि को खेत में लगाना चाहिए। रोग फैलाने वाली मक्खी को मारने के लिये कीटनाशक का उपयोग प्रभावी रहता है। इनमें डाईमिथोएट (0.03 व 0.05 प्रतिशत) व मैलाथियान प्रमुख हैं। देर से की गई बुवाई में रोग ज्यादा फैलता है। मिश्रित खेती या अन्तः खेती में रोग कम लगता है।

मोजेक मोटल विषाणु रोग: इस रोग में हल्के हरे रंग के धब्बे सामान्य हरे रंग के बीच में दिखाई देते हैं। इससे पत्तियों का आकार सिकुड़ जाता है व किनारे ऊपर उठना शुरू हो जाते हैं। धीरे–धीरे रोग ग्रस्त पत्तियां मुड़ सिकुड़ कर सख्त सी दिखाई देती है। उग्र अवस्था में फूलों की जगह हरे–हरे रेशे बन जाते हैं। यह रोग ऐसे वायरस से उत्पन्न होता है जो एफिस करेसीवोरा या एफिस गोसीपाई नामक कीट से फैलता है।

रोकथाम: स्वस्थ फसल से उत्पन्न बीज काम में लेना चाहिए। रोग रोधक किस्में लगानी चाहिए।

छाछ्या (पाऊडरी मिल्डयू): यह रोग इरीसाईफी पोलीगोनाई नामक फफूंद से होता है जो भूमि के ऊपर मूंग के सभी भागों पर लग सकता हैं। शुरू में पत्तियों पर हल्के गहरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। धीरे–धीरे ये धब्बे सफेद चूर्ण के रूप में बदल जाते हैं व आपस में मिलकर पत्तियों, तने व फलियों पर सफेद चूर्ण की सतह जमा देते हैं। उग्र अवस्था में पत्तियां गिर जाती हैं। फलियां या तो बनती ही नही या छोटी रह जाती हैं जिनमें विकृत बीज बनते हैं।

रोकथाम: रोग को रोकने के लिये घुलनशील गन्धक का छिड़काव काफी प्रभावी रहता है। इसके अलावा केराथेन (0.1 प्रतिशत) या केलीक्सीन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव भी किया जा सकता है।

शाकाणु झुलसा (बेक्टीरीयल ब्लाईट): यह रोग एक शाकाणु जेन्थोनास से उत्पन्न होता है। शुरू में पत्तियों पर छोटे धब्बे दिखाई देते हैं। धीरे–धीरे इन धब्बों के चारों तरफ का हिस्सा मर जाता है। उग्र अवस्था में पत्तियों का एक बड़ा भाग झुलस जाता है। तने पर भी रोग के लक्षण देखे जा सकते हैं। इन सबसे फलियों में बन रहे बीजों पर असर पड़ता है व उपज काफी कम हो जाती है।

रोकथाम: बीजों को स्ट्रेप्टोसाइक्लीन (0.025 प्रतिशत) के घोल से 2 घन्टे तक उपचारित करके बोना चाहिए तथा खड़ी फसल पर भी स्ट्रेप्टोसाइकलीन (0.01 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

पत्ती धब्बा (लीफ स्पोट): मूंग में यह रोग सरकोस्पोरा केनेसस व सरकास्पोरा क्रुएन्टा से होता है। यह रोग आर्द्र मौसम व छुटपुट वर्षा के समय पत्तियों पर फैलता है। ये धब्बे भूरे रंग के होते हैं जो सफेद किनारों से

घिरे रहते हैं। उग्र अवस्था में ये धब्बे बढ़ जाते है जिससे पत्तियां गिर जाती हैं। इन धब्बों के अलावा कुछ और फफूंदों से भी मूंग की फसल को नुकसान होता है।

रोकथाम के उपाय: पत्ती धब्बे को कार्बेन्डेजिम (0.2 प्रतिशत) या मेन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) के एक या 15 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव से रोका जा सकता है।

मोठ

मोठ शुष्क क्षेत्रों में खरीफ के मौसम में लगाई जाने वाली एक प्रमुख फसल है। इसकी खेती करीब 15 लाख हेक्टेयर में होती है। इस दलहनी फसल की विशेषता यह है कि इसमें सूखा प्रतिरोधी क्षमता है जिसकी वजह से यह कम वर्षा (150–250 मि.मी.) वाले क्षेत्रों में भी आसानी से अच्छी उपज दे देती है। जब वर्षा सामान्य समय पर होती है तो किसान अपने खेतों मे बाजरा लगाते हैं पर जब वर्षा देर से (25 जुलाई के बाद) होती है तो शुष्क क्षेत्रों में किसान अधिकतर मोठ ही लगाना पसन्द करते हैं। मोठ की फसल के प्रमुख रोग निम्न है,

पत्ती धब्बा रोग (लीफ स्पोट): यह रोग कोलीटोट्राईस ट्रन्केटम नामक फफूंद से होता है। रोग की शुरूआत गोल धब्बों के रूप में पत्तियों पर होती है जो 5–12 मि.मी. तक के आकार के होते हैं। इनके किनारे गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। दूसरा पत्ती धब्बा रोग अल्टरनेरिया अल्टरनेटा नामक फफूंद से होता है। शुरू में छोटे–छोटे धब्बों के रूप में दिखाई देकर ये धीरे धीरे लाल हो जाते हैं व पत्ती का एक बड़ा भाग सुखा देते हैं। तीसरा पत्ती धब्बा रोग मिरोथिशियम रोरीड़म नामक फफूंद से होता है। जिसके धब्बे गहरे लाल रंग के होते हैं व आकार 4–8 मि.मी. तक होता है।

रोकथाम: ये धब्बे मौसम में आर्द्रता व छुटपुट वर्षा के समय होते हैं। ज्योंहि मौसम प्रतिकूल हो जाता है इनकी उग्रता स्वतः ही समाप्त हो जाती है। परन्तु कभी कभी अगर वर्षा व आर्द्रता का समय लम्बा चले तब खेत में एक छिड़काव मेन्कोजेब या कापर आक्सीक्लोराईड़ (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) नामक फफूंदनाशकों का करना चाहिए छिड़काव का निर्णय स्वविवेक या मौसम की अनुकूलता के हिसाब से लेना चाहिए।

शाकाणु झुलसा (बेक्टीरीयल ब्लाईट): यह रोग जेन्थोमोनास एकजोनोपोड़िस पेथोवार फेजीयो लायी के द्वारा होता है जिसकी शुरूआत असिमित भूरे रंग के धब्बों से होती है जो पत्तियों की ऊपरी सतह पर ज्यादा दिखते हैं। धीरे धीरे ये धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों के बड़े भाग को झुलसा देते हैं। झुलसा रोग अधिक आर्द्रता के समय ज्यादा होता है।

रोकथाम: रोग सहनशील किस्में लगानी चाहिए। यदि मौसम बीमारी फैलने के अनुकूल हो व पानी की उपलब्धता हो तो एक छिड़काव स्ट्रेप्टोसाइकलीन (0.01 प्रतिशत) या एग्रीमाईसिन (0.02 प्रतिशत) का करना चाहिए।

पीतशिरा रोग (येलो मोजेक): यह मोठ की सबसे भंयकर बिमारी है जो पीलीया नाम से काफी प्रसिद्ध है। यह एक वायरस से होती है। रोग की शुरूआत में छोटी या नई पत्तियों पर हल्के फैले हुये पीले–पीले चकत्ते

नजर आते हैं जो धीरे धीरे बढ़ते हैं व पत्तियों के हरे रंग के बीच मोजेक की आकृति बनाते हैं। इन धब्बों का आकार धीरे–धीरे बढ़ता है व कई बार तो पूरी पत्ती ही पीली पड़ जाती हैं। रोग ग्रसित पौधे पर फूल व फलियाँ कम मात्रा में होती हैं। ऐसी फलियों में बीज भी छोटे, सिकुड़े हुये व बदरंग होते हैं।

रोकथाम: ग्वार के साथ खेती करने में इस रोग का प्रकोप कम होता है। मिश्रित खेती में बाजरा, ज्वार, तिल आदि लगाने से भी यह रोग कम किया जा सकता है। समय पर की गई बुवाई से भी रोग का प्रकोप कम किया जा सकता है। रोग सहनशील किस्में जैसे आर.एम.ओ. 40, आर.एम.ओ. 257, काजरी मोठ 3 आदि लगानी चाहिए। डाईमिथोएट (0.02 प्रतिशत) के दो छिड़काव करने से विषाणु फैलाने वाले कीट बेमीसिया टेबेसाई का प्रकोप रोका जा सकता है। इसके अलावा मेटासिस्टोकस (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव भी काफी प्रभावशाली रहता है।

जड़ गांठ रोग (निमेटोड): यह रोग एक सुत्रकृमि मिलोइडोगाईनी इन्कोगनिटा से होता है इस रोग से ग्रसित पौधे पीले पड़ जाते हैं, उनकी वृद्धि रूक जाती है व पत्तियाँ सूखने लगती हैं। रोग ग्रसित पौधों की जड़ों पर छोटी छोटी गांठे दिखाई देती हैं। उग्र अवस्था में जड़ें सड़कर मरनी शुरू हो जाती हैं जिससे पौधा स्वतः ही मर जाता है।

रोकथाम: मोठ की कुछ रोग सहनशील किस्में जैसे आई.पी.एम.ओ.–302, आई.पी.सी.एम.ओ.–598 लगानी चाहिए। सूत्रकृमि नाशक कार्बोफयूरान के उपयोग से भी रोग कम किया जा सकता है। सरसों की खली के भूमि में डालने से व गर्मी की गहरी जुताई से भी यह रोग रोका जा सकता है।

चंवला

चंवला जायद व खरीफ में बोई जाने वाली एक प्रमुख दलहनी फसल है। आजकल शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में इसकी खेती काफी लोकप्रिय हो रही है। शुष्क क्षेत्रों में 250 मि.मी. से 400 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में इसे काफी क्षेत्र में उगाया जा रहा है। एक अच्छी किस्म 60–70 दिन में पककर तैयार हो जाती है व करीब 10 क्विंटल तक पैदावार देती है। इसकी हरी फलियाँ सब्जी के काम में आती हैं। दाल के अलावा चंवलें के आटे को भी कई पकवानों में काम में लिया जाता है। इसके बीज बहुत ही जल्दी अंकुरित होते हैं लेकिन बीजों के भडारण में उचित ध्यान नहीं देने पर कीड़े जल्दी लगते हैं।

शुष्क जड़ गलन: यह रोग मेक्रोफोमिना फेजीयोलीना नामक फफूंद से होता है जो भूमि व बीज दोनों तरह से फसल पर रोग उत्पन्न करती है। लेकिन इसका ज्यादा फैलाव भूमि से ही होता है। इस रोग का प्रकोप कम वर्षा या दो वर्षा के बीच में लम्बा अतंराल होने पर ज्यादा होता है। भूमि के अधिक तापक्रम के होने से यह रोग तेजी से फैलता है। रोग की उग्र अवस्था में 40 से 50 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। मुरझाए पौधे व हल्के भूरे रंग के तनों के रूप में इस रोग की पहचान हो सकती है। ऐसे पौधे समय से पहले ही सूख जाते हैं जिन्हें खेत से आसानी से उखाड़ा जा सकता है। रोग ग्रस्त पौधों पर फलियां नहीं लगती तथा जड़ों में नत्रजन संचय करने वाली ग्रंथिया नहीं बनती हैं।

रोकथाम : इस रोग की रोकथाम के लिये बोने से पहले बीजों को कार्बेन्डेजिम (2 ग्राम प्रति किलो बीज) से उपचारित करना चाहिए। ट्राईकोडरमा हारजेनियम (मरू सेना 1, काजरी में उपलब्ध) से 4 ग्राम प्रति किलो बीज से उपचार अत्यंत प्रभावी रहता है। पौधों की कतारों के बीच में खेत में नहीं काम आने वाले खरपतवारों के अवशेष डाल देने से खेत में नमी का संरक्षण होता है। इसके अलावा 3.5 टन मिंगनी की खाद भी मिलाना अत्यंत उपयोगी रहता है। सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्रों में जहां रबी की फसल ली जाती है, 2.5 टन सरसों की फसल अवशेष व आधा टन सरसों की खली मिलाकर मई महीने में खेत में डालनी चाहिए व तेज गर्मी के समय एक पानी देना चाहिए। तेज गर्मी में सरसों के कचरे के सड़ने से जो गैसें उत्पन्न होती हैं वे इस रोग की फफूंद को काफी हद तक नष्ट कर देती हैं। सिंचाई की सुविधा कम होने पर बुवाई से 15 दिन पहले कम्पोस्ट खाद 4 टन प्रति हेक्टेयर मिलाने से रोग कम हो जाता है व उपज में भी वृद्धि होती है।

पत्ती धब्बा : यह रोग सरकोस्पोरा नामक फफूंद से होता है व पौधे की पुष्पीय अवस्था पर दिखाई देता है। अधिक नमी वाले मौसम में यह रोग ज्यादा फैलता है। इस रोग में पत्तियों की ऊपरी सतह पर लाल रंग के धब्बे बनते हैं जो निचली सतह पर हल्के लाल रंग के दिखाई देते हैं। रोग की उग्र अवस्था में ये धब्बे अनियमित आकार के हो जाते हैं।

रोकथाम के उपाय : कार्बेन्डेजिम (2 ग्राम प्रति लीटर) का छिड़काव काफी प्रभावी रहता है।

जीवाणु झुलसा : यह रोग जेन्थोमोनास नामक जीवाणु से होता है इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम अंकुरित पौधों के बीजपत्रों एवं पत्तियों पर जल सिक्त धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। बाद में ये भूरे रंग के होकर कंकर का रूप धारण कर लेते हैं। अनुकूल वातावरण में यह रोग पौधों के अन्य भागों पर जैसे तने आदि पर भी फैल जाता है। कभी–कभी तने पर इतना अधिक फैलता है कि तना फट कर टूट जाता हैं। रोग की उग्र अवस्था में पत्तियां पीली पड़ कर झड़ जाती हैं तथा पौधा नग्न हो जाता है। फलियों के किनारों पर गहरे हरे रंग की जल सिक्त रेखाऐं दिखाई देती हैं। रोग ग्रस्त फलियां पीली पड़ कर सिकुड़ जाती हैं तथा बीज भी छोटे रह जाते हैं अधिक गर्मी, कम ताप एवं बौछार वाली वर्षा में रोग तेजी से फैलता है।

रोकथाम के उपाय : इस रोग का सबसे उत्तम उपाय रोगरोधक किस्मों का चुनाव है। बीजों को स्ट्रेप्टोसाइक्लीन के घोल (1 ग्राम 4 लीटर पानी में) में दो घण्टे डुबाकर छाया में सुखाकर बोने के काम में लेना चाहिए। पत्तियों पर रोग के लक्षण दिखते ही स्ट्रेप्टोसाइक्लीन का छिड़काव (.01 प्रतिशत) करना चाहिए। खेत को पुराने कचरे से साफ रखना चाहिए।

पीत शिरा मोजेक : यह एक वायरस के द्वारा पत्तियों पर फैलने वाला रोग है। इस रोग की शुरूआत छोटी–छोटी पत्तियों पर अनियमित आकार के धब्बों के रूप में होती हैं। जो धीरे–धीरे आपस में मिल जाते हैं। उग्र अवस्था में हरे व पीले रंग का मिश्रण, शिराओं का मुड़ना, पत्तियों का असामान्य आकार आदि प्रमुख लक्षण देखे जा सकते हैं। इस तरह के रोगग्रस्त पौधों में बीज या तो बनते ही नहीं अथवा बहुत छोटे आकार के बनते हैं जड़ों में नत्रजन वाली ग्रंथियां भी देखने को मिलती है।

रोकथाम के उपाय: रोग से फसल को बचाने के लिए मिश्रित खेती करनी चाहिए। खेत में रोग रोधक किस्में लगानी चाहिए। अगेती बुवाई से भी रोग कम फैलता है।

रोली: यह रोग यूरोमाईसिस नामक फफूंद से होता है। इसकी शुरूआत छोटे–छोटे चकतों के रूप में पत्तियों पर होती हैं जो धीरे–धीरे पूरे पौधे पर फैल जाते हैं। अनुकूल अवस्था में ये धब्बे गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं जिससे पत्तियों का गिरना शुरू हो जाता है।

रोकथाम के उपाय: इस रोग की रोकथाम 15 दिन के अन्तर पर मेन्कोजेब के 2 छिड़काव (0.2 प्रतिशत), करने से की जा सकती है।

तिल

तिल खरीफ मौसम में उगाई जाने वाली एक प्रमुख तिलहनी फसल है। शुष्क क्षेत्रों में इसकी खेती काफी बड़े क्षेत्र में होती हैं। तेल के अलावा तिल के बीज कई तरह के व्यंजनों में काम आते हैं। राजस्थान में ब्यावर शहर की तिल पपड़ी देश विदेश में प्रसिद्ध हो चुकी है। इस अकेले उद्योग से कई हजार व्यक्तियों को रोजगार भी मिला हुआ है। शुष्क क्षेत्रों में तिल मिश्रित खेती का भी एक प्रमुख भाग है।

जड़ व तना गलन: यह भूमि जनित फफूंद मेक्रोफोमिना फेजीयोलीना से होता है। शुष्क क्षेत्रों में वर्षा के अनियमित होने पर यह रोग तेजी से फैलता है। इस रोग से तने पर गहरे धब्बे पड़ जाते हैं, जो अधिकतर गहरे भूरे रंग के होते हैं व शुरू में तने के निचले भाग में देखे जा सकते हैं। उग्र अवस्था में ये चकते ऊपर व नीचे की ओर बढ़ते है। तने पर काले रंग के गोल–गोल छोटे–छोटे धब्बे भी देखे जा सकते हैं। रोग ग्रस्त पौधों की जड़ों पर भी कालापन दिखाई देता है जिससे ऐसा लगता है कि जड़ों पर चारकोल छिड़क दिया गया हो। ऐसे पौधे पर लगने वाली फलियाँ भी काली पड़ जाती हैं जो समय से पहले फट जाती हैं जिनके अन्दर बीज भी छोटे व रंगहीन होते हैं। रोग ग्रस्त पौधे धीरे–धीरे मर जाते हैं।

रोकथाम: खेत में फसलचक्र अपनाना चाहिए। गर्मी में एक गहरी जुताई करनी चाहिए। जहाँ सिंचाई की सुविधा हो वहाँ गर्मी के मौसम में 2.5 टन सरसों के फसल अवशेष को 0.5 टन सरसों की खली के साथ एक हेक्टेयर में दबाकर जुताई करके एक सिंचाई दे देनी चाहिए। बीजों को कार्बेन्डेजिम (2 ग्राम प्रति किलो बीज) या मित्र फफूंद ट्राईकोडर्मा हारजेनियम से 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज उपचारित करके बोने चाहिए। खेत में नमी संरक्षण के उपायों को अपनाना चाहिए। यह रोग अल्टरनरिया सिसेमाई नामक फफूंद से होता हैं। इस रोग की शुरूआत पत्तियों पर छोटे गोल भूरे रंग के धब्बों से होती हैं। उग्र अवस्था में ये धब्बे आपस में मिलकर बड़े हो जाते है जिससे पत्ती का एक बड़ा भाग झुलस जाता है। बाद में ये पत्तिया झड़ जाती है। रोग के लक्षण तने व फलियों पर भी दिखार्द देते है। रोग रोधक किस्मों का प्रयोग करें। रोग के लक्षण दिखते ही मेन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

पत्ती धब्बा: यह रोग सरकोस्पोरा सिसेमाई नामक फफूंद से होता है। रोग की शुरूआत पत्तियों पर छोटे–छोटे बारीक धब्बों के रूप में होती है जो धीरे–धीरे फैलकर असमान आकार के बड़े हो जाते हैं जो

पत्तियों के दोनो तरफ देखे जा सकते हैं। प्रारम्भ में रोग ग्रसित भाग हल्के भूरे रंग का होता है जिसके मध्य में सफेद रंग देखा जा सकता है। जो धीरे–धीरे उग्र अवस्था में पत्ती को झुलसा देते हैं। अगर झुलसाने वाली स्थिति जल्दी शुरू हो जाती है तो पत्तियाँ गिर जाती हैं। रोग को तने व फलियों पर भी देखा जा सकता है।

रोकथाम : कार्बेन्डेजिम (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव सही समय पर करने से रोग कम किया जा सकता है।

छाछ्या (पाऊडरी मिल्डयू) : यह रोग इसीसाईफी या ओईडीयम नामक फफूंद से होता है। रोग की शुरूआत में रूई के समान छोटे–छोटे धब्बे पत्तियों पर दिखाई देते हैं जो आपस में जुड़कर पूरी पत्ती को सफेद सा कर देते हैं। धीरे–धीरे यह रोग पत्तियों के डण्ठल व फलों पर भी दिखाई देता है। उग्र अवस्था में पत्तियां सूख जाती हैं।

रोकथाम : तिल की दो किस्में ओ.एम.टी.–30 एवं डी.ओ.आर.एस 101 छाछ्या के लिये सहनशील पाई गई हैं। रोग के लक्षण दिखते ही सल्फेरस (0.2 प्रतिशत) या केराथेन (0.1 प्रतिशत) के दो छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर करने चाहिए।

फिलोड़ी : यह एक माइकोप्लाज्मा से होने वाली प्रमुख बीमारी है जो ओरोसिस एलबीटकट्स नामक कीट से फैलती है। इस रोग में फल हरी–हरी रेशे वाली संरचनाओं में परिवर्तित हो जाते हैं जिसके बाद में पौधे में फलियों के स्थान पर सिर्फ हरी पत्तियों का ही विकास होता है। रोग ग्रस्त पौधा दूर से ही दिखाई दे जाता है जिसमें सामान्य से ज्यादा शखाऐं होती हैं। ऐसे पौधे वजन से झुकना शुरू हो जाते हैं। प्रायः इस रोग का प्रकोप अगेती फसल में ज्यादा होता है। इस रोग से बीजों में तेल की मात्रा में भी कमी होती है।

रोकथाम के उपाय : रोग सहनशील किस्मों को खेत में लगाना चाहिए। रोग ग्रसित संरचनाओं को तोड़ कर जला देना चाहिए। टेट्रासाइक्लीन हाइड्रोकलोराईड या ऑक्सी टेट्रासाइक्लीन का 0.02 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

पत्ती वर्ण (लीफ कर्ल) : यह एक वायरस निकोटियाना 10 से होता है जो कि व्हाईट पलाई नामक कीट द्वारा फैलता है। पत्तियां मुड़ जाती हैं व शिरायें मोटी हो जाती हैं। इस वजह से पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है तथा अन्दर कि तरफ मुड़कर रोल की तरह सिकुड़ जाती हैं।

रोकथाम के उपाय : मिथायल डिमेटोन या कार्बारिल कीटनाशक का एक मिली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए ।

फसलों में दीमक का समन्वित प्रबंधन

ए.एस. तोमर, आर.एस. त्रिपाठी, एस.के. शर्मा, आर.आर. मेघवाल एवं मनीष चौधरी
कृषि विज्ञान केन्द्र, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

पश्चिमी राजस्थान में दीमक कीट को उदई के नाम से जाना जाता है। इस कीट का प्रकोप सिंचित फसलों की अपेक्षा बारानी फसलों में अधिक होता है। दीमक फसलों के अलावा कपड़ा, लकड़ी, कागज तथा उन सभी चीजों को खाती है जिनमें सेल्यूलोज नामक पदार्थ पाया जाता है। दीमक चींटियों से मिलती–जुलती होती हैं इसलिए इन्हें 'सफेद चींटियां' भी कहते हैं। यह अपना घर अधिकतर परती भूमि एवं छायादार जगह पर बनाती हैं। बालू तथा हल्की मिट्टी में इस कीट को बढ़ने के लिए उपयुक्त वातावरण मिलता है। इस क्षेत्र में दीमक की एक दर्जन से भी अधिक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। दीमक कीट एक सामाजिक जीव है जिसमें राजा–रानी, सैनिक तथा मजदूर तीन प्रकार की श्रेणीयाँ होती हैं। दीमक कीट की एक कॉलोनी में मजदूर दीमक की संख्या सबसे ज्यादा होती है। बरसात के मौसम में पंखधारी नर और मादा रोशनी के आसपास काफी अधिक संख्या में मंडराते हैं और यहीं पर यह जोड़े बनाते हैं। तत्पश्चात् ये कीट पंख गिराकर जमीन में घुस कर अपना नया घर बनाते हैं। मादा दीमक इस नये घर की रानी होती है तथा अण्डे देना शुरू कर देती हैं। इन्हीं अण्डों से बहुत अधिक संख्या में मजदूर दीमक कीट पैदा होती हैं जो कि फसलों को नुकसान पहुँचाती हैं।

दीमक से फसलों को नुकसान

दीमक भूमि के अन्दर रहकर फसलों के बीजों व जड़ों पर आक्रमण करती हैं। यह पौधों की जड़ों को काट कर खाती हैं जिससे पौधों की बढ़वार रूक जाती है। कीट का अत्यधिक प्रकोप होने पर पौधे सूख जाते हैं जिससे फसल की पैदावार में काफी कमी आ जाती है। दीमक उन फसलों में जिनमें एक लम्बी जड़ पायी जाती है कि अपेक्षा जिन पौधों की जड़ गुच्छानुमा यानि झकड़ा–जड़ होती है उन्हें अधिक नुकसान पहुँचाती है। दीमक का प्रकोप खरीफ की फसलों की अपेक्षा रबी की असिंचित फसलों में अधिक होता है। बाजरा की फसल में दीमक की माइकोटरमस ओवसाई नामक प्रजाति द्वारा अधिकांश नुकसान होता है। यह पौधों की जड़ और बाद में तने को खाकर नुकसान करती है जिससे पौधे पहले मुरझाने लगते हैं और बाद में सूख जाते हैं। ग्वार की फसल में दीमक की कई प्रजातियों के द्वारा नुकसान पहुचाया जाता हैं। इसका प्रकोप अधिकतर बीजों के अंकुरण के समय या फूल–फली बनने की अवस्था में होता है। यह ग्वार के पौधें की जड़ों को नुकसान करने के साथ–साथ जमीन के पास से तने में छेद करके अन्दर नुकसान पहुँचाती हैं जिससे पौधे में पोषक तत्वों का आना कम और कभी–कभी बिल्कुल बन्द हो जाता है। इस कारण इसका प्रतिकूल प्रभाव ग्वार की फसल की पैदावार पर पड़ता है। मूंग, मोठ तथा चँवला आदि

दलहनी फसलों में दीमक की ओडेनटोटरमस नामक प्रजाति द्वारा अधिक नुकसान किया जाता है। दलहनी फसल की किसी भी अवस्था में इस कीट का प्रकोप हो जाता हैं। दीमक द्वारा मूंग की फसल में 5–17 प्रतिशत, मोठ की फसल में 10–15 प्रतिशत तथा चावल की फसल में 24–30 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। मिर्च की फसल में दीमक की ओडोनटोटरमस और माइक्रोटरमस प्रजातियाँ अधिक नुकसान करती हैं। इनके द्वारा मिर्च की फसल में 10–45 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। गेहूँ की फसल में दीमक का प्रकोप असिंचित अवस्था में अधिक होता है। गेहूँ को भी दीमक कीट की ओडोनटोटरमस ओर माइक्रोटरमस प्रजाति अधिक नुकसान करती है। गेहूँ की फसल में दीमक की इन प्रजातियों द्वारा 7–15 प्रतिशत तक नुकसान किया जा सकता है। धामण, सेवन इत्यादि चारा घासों में भी दीमक का प्रकोप पाया जाता है। इस कीट का चारा घासों में प्रकोप होने पर घास के गुच्छे सूख जाते हैं।

जीवन चक्र

बरसात के शुरू होते ही (जून–जुलाई) में पंखधारी नर और मादा उड़ान भरते हैं, जिसको मैथुन उड़ान कहते हैं। ये मैथुन करते हैं एवं इसी बीच इनके पंख टूटकर गिर जाते हैं तथा जमीन में कई फीट नीचे जाकर घर बनाती हैं। ये ही क्रमशः राजा और रानी में परिवर्तित हो जाते हैं। मादा का उदर अण्डों के कारण काफी फूल जाता है। यह पहले तो कम संख्या में अण्डे देती हैं, परन्तु बाद में 30000 से 40000 अण्डे प्रतिदिन देती हैं। अण्डे हल्के पीले रंग के गुर्दाकार होते हैं। अण्डे 2–3 सप्ताह में फूट जाते हैं। अण्डों से निकलने के पश्चात् शिशु सफेद पीले रंग के होते हैं। प्रारंभ में कुछ दिन ये राजा रानी की विष्ठा खाकर जीवन व्यतीत करते है तथा बाद में भोजन की तलाश में बाहर निकलते हैं। शिशु 6–13 महीनों में 4–10 बार त्वचा निर्मोचन करने के पश्चात् प्रौढ़, श्रमिक, सैनिक तथा पंखधारी नर व मादाओं में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार इनकी वर्ष में केवल एक ही पीढ़ी मिलती है। दीमक के परिवार में निम्नलिखित सदस्य होते हैंः–

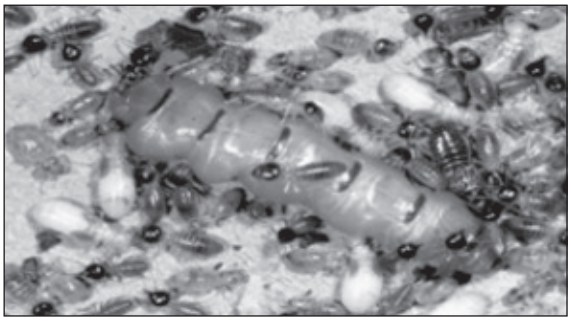

दीमक परिवार के विभिन्न सदस्य

रानी – रानी का सिर व वक्ष छोटा होता है तथा उदर काफी बड़ा और लम्बा होता है। इसका कार्य केवल अण्डे देना होता है। पूरी दीमक कॉलोनी पर इसका नियंत्रण होता है। इसका जीवनकाल लगभग 10 वर्ष का होता है।

राजा : राजा अनिषेचित अण्डों द्वारा विकसित होता है। यह अपेक्षाकृत छोटा होता है और हमेशा रानी के साथ रहता है। इसका मुख्य कार्य रानी के साथ संभोग करना होता है।

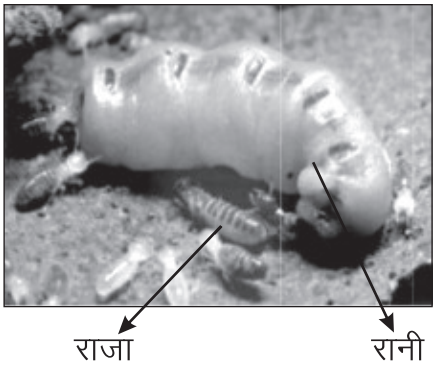

श्रमिक : यह पंखहीन होते हैं एवं उनका आकार छोटा होता है। यह ऐसे नर व मादा होते हैं जिनके जननांग विकसित नहीं होते। श्रमिक दीमक की हानिकारक अवस्था है। इनका विकास भी अनिषेचित अण्डों द्वारा होता है। सम्पूर्ण परिवार का पालन–पोषण इन्हीं पर आधारित होता है। ये कुल परिवार का 80–90 प्रतिशत तक होते हैं। इनका जीवनकाल लगभग 3–5 वर्ष होता है।

सैनिक : इनमें और श्रमिक में केवल यही अन्तर होता है कि इनका शरीर बड़ा एवं जबड़े काफी नुकीले होते हैं। इनका कार्य केवल परिवार की रक्षा करना होता है। इनका विकास अनिषेचित अण्डों द्वारा होता है। परिवार में इनकी संख्या 10 प्रतिशत तक होती है।

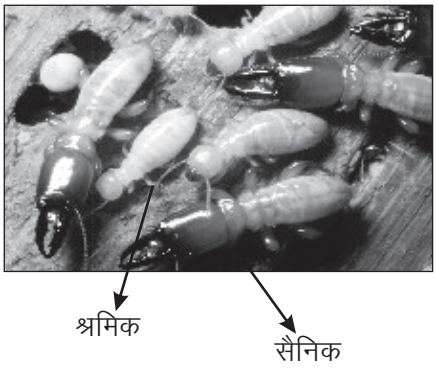

समन्वित कीट प्रबन्धन

- खेतों में पुरानी फसलों के अवशेष नही छोड़ें।
- खेतों में कच्ची गोबर की खाद का प्रयोग नहीं करें।
- फसलों में निर्धारित समय पर सिंचाई करें।
- चिड़िया जैसे तीतर, बटेर, कौआ, गौरेया, मैना आदि इसके प्राकृतिक शत्रु हैं। अतः इनका संरक्षण करें।
- फसल की बुवाई से पहले 700 किग्रा/हैक्टेयर की दर से नीम की खली का प्रयोग करें।
- **बीज उपचार :** बुवाई के समय बीज को फिप्रोनिल 5 एस.सी. की 5–6 मि.ली. अथवा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 3 मि.ली. अथवा बाईफेन्थ्रिन 10 प्रतिशत ई.सी. की 3–4 मि.ली. मात्रा का प्रति किग्रा बीज की दर से बीज उपचार कर फसलों की बुवाई करें।
- **खड़ी फसल में दीमक का नियंत्रण :** खड़ी फसलों में दीमक के नियंत्रण के लिए सिंचाई के पानी के साथ निम्न में से किसी भी एक कीटनाशक का प्रयोग किया जा सकता है जैसे फिप्रोनिल 5 एस.सी. – 2.5–3.0 लीटर/हेक्टेयर या इमीडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. – 600–750 मि.ली./हेक्टेयर या बाईफेन्थ्रिन 10 ई.सी. – 1.0–1.25 लीटर प्रति हेक्टेयर या क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. – 4.0 लीटर प्रति हेक्टेयर।

फसलों, घरों व गोदाम में चूहा नियंत्रण

आर. एस. त्रिपाठी, विपिन चौधरी एवं ए.एस. तोमर
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

चूहे बीज बोने से लेकर फसल पकने तक नुकसान पहुँचाते हैं। जब बीज खेतों में बो दिया जाता है चूहे उसे निकाल कर नष्ट कर देते हैं। अकुंरण के समय छोटी–छोटी कोमल अंकुरों को कुतर डालते हैं। फसल की परिपक्वता की स्थिति में व खलिहानों में रखी परिपक्व फसल मे अपार क्षति पहुँचाते हैं। उपज के खलिहान से गोदाम तथा मण्डी तक पहुँचने तक चूहे इनका पीछा नही छोड़ते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि चूहे फसल की हर अवस्था में क्षति करते हैं। चूहों की विध्वंसक गतिविधियाँ प्रमुख फसलों में 5 से 20 प्रतिशत तक हानि पहुँचाती हैं।

घरों तथा गोदाम में चूहे कई प्रकार से नुकसान पहुँचाते हैं, यह खाद्य सामग्री को चट कर जाते हैं, घरेलू वस्तुओं को कुतर डालते हैं यहाँ तक की बिजली के तार भी इनसे अछुते नहीं हैं। बहुत से चूहे दीवारों में अपना बिल बना कर रहते हैं व उसे खोखला कर कमजोर कर देते हैं। चूहे खाद्य पदार्थों को अपनी मैंगनी, पेशाब तथा बाल आदि गिराकर दूषित कर देते हैं जो खाने योग्य नहीं रहता। चूहे मनुष्य व उस पर आश्रित जानवरों में कई प्रकार की बीमारियाँ फैलाते हैं जिसमें मुरिन, टाइफस बुखार, एलेप्टोस्पाइरोसिस व प्लेग मुख्य है।

चूहे नुकसान क्यों करते हैं

इसके दो प्रमुख कारण है प्रथम–चूहों के अग्रिम दो दांत, जो कि नुकीले एवं लम्बे होते हैं जीवन भर बढ़ते रहते हैं और इनकी लम्बाई एक वर्ष में करीब 12 से.मी. हो जाती है। यदि चूहे इनकी बढ़त को नहीं रोकें तो चूहों के मुंह बन्द हो जायेंगे और इन्हें भूखों मरना पड़ेगा। अतः पेट भर खाने के बाद भी चूहे इन दांतों की लम्बाई को कम रखने के लिए इनकी घिसाई करते रहते हैं तथा सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु को काट–पीट डालते हैं चाहे वह फसल हो, कपड़ा हो अथवा अन्य कोई वस्तु हो। इस तरह चूहे खाते तो कम हैं व बिगाड़ा अधिक करते हैं। दूसरा–यह सदैव बहुत अधिक संख्या में उपस्थित होते हैं चूकि इनकी प्रजनन क्षमता बहुत अधिक होती है। एक जोड़ा साल में 800 से 1200 चूहे पैदा करता है।

खेतों में चूहा नियंत्रण के उपाय

खेतों में चूहा नियंत्रण दो प्रकार से किया जा सकता है प्रथम विधि के अन्तर्गत चूहों के अवासीय स्थलों को हटाकर इनका नियंत्रण किया जा सकता है। यह पाया गया है कि चूहे मेढ़ों पर बिल बनाकर रहते हैं इसलिये खेतों मे मेढ़ों की ऊँचाई तथा चौड़ाई यथा सम्भव कम रखनी चाहिए, जिससे चूहे उस पर

चूहों की प्रमुख हानिकारक प्रजातियाँ

चूहे का साधारण नाम	वैज्ञानिक नाम	मुख्य निवास स्थान	मुख्य प्रजनन काल
कृषि क्षेत्रों में			
भारतीय जरबिल	*टटेरा इंडिका*	फसली खेतों, चारागाहों एवं अन्य कृषि क्षेत्रों में	फरवरी, जुलाई –अगस्त तथा नवम्बर
छोटी घूस	*बेंडीकोटा बेंगालेंसिस*	खेतों, शहरी गोदामों तथा आवासीय क्षेत्रों में	वर्ष भर
छोटी पूंछवाला छछूंदरी चूहा	*निसोकिया इड़िका*	फसली खेतों, चारागाहों, उद्यानों एवं शुष्क क्षेत्रों में	जनवरी–मार्च तथा अगस्त–अक्टूबर
भारतीय मरु जरबिल	*मेरियोनिस हरियानी*	फसली खेतों, पड़त एवं बंजर भूमि, रेतीले क्षेत्रों एवं चारागाह में	फरवरी–अप्रेल तथा जुलाई , सितम्बर–नवम्बर
मैदानी चुहिया	*मस बुडुगा*	फसली खेतों में	सितम्बर–अक्टूबर, फरवरी तथा जून
घरों एवं गोदामों में			
घरेलू चूहा	*रैटस रैटस*	ग्रामीण एवं शहरी आवासीय क्षेत्रों में	वर्ष भर
घरेलू चुहिया	*मस मस्कुलस*	गोदामों, घरों एवं खेतों में	वर्ष भर

बिल ना बना सकें। इसी प्रकार खरपतवार तथा पिछली फसल का कचरा चूहों को आकर्षित करता है व इसमें चूहे ना केवल सुरक्षित रहते हैं बल्कि मुख्य फसल तैयार होने तक उस पर जीवन यापन भी करते हैं। इसलिये खरपतवार नियंत्रण कर स्वच्छ खेती करने से चूहों की संख्या में कमी की जा सकती है।

दूसरी विधि चूहानाशी विष के प्रयोग की हैं। यह चूहा नियंत्रण की सबसे कारगर विधि है जो कि सभी फसलों मे अपनाई जा सकती है। फसल मे विष द्वारा नियंत्रण कार्यक्रम कम से कम दो बार करना चाहिए। प्रथम बार फसल बुवाई से पूर्व तथा पुनः फसल पकते समय व आवश्कतानुसार। आमतौर पर चूहे शंकालु प्रकृति के होते है इसलिये चूहा नाशी विष आसानी से नहीं खाते हैं। इसलिये विष को निश्चित मात्रा मे खाद्य पदार्थ या खाद्यानों में मिला कर चुग्गा बनाना पड़ता है।

चुग्गा बनाने व प्रयोग की विधि

जिंक फॉस्फाइड : जिंक फॉस्फाइड एक अत्यन्त तेज असरकारक जहर होने की वजह से इसकी ग्राह्यता व नियंत्रण कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए विष चुग्गे से पहले चूहों को सादा चुग्गा खिलाया जाता है। एक किलोग्राम सादा चुग्गा बनाने के लिए एक किलोग्राम अनाज (बाजरा, गेहूँ) में 20 ग्राम खाने का तेल (मूंगफली/सरसों/तिल) मिलाकर चुपड लें। इन चुग्गों को चूहों के ताजे बिलों में (10.15 ग्राम प्रति बिल

की दर से) डाल देना चाहिए। ताजा बिलों की पहचान के लिए जरुरी है कि सर्वप्रथम खेत में व आसपास मौजूद सभी बिलों को बन्द करें। अगले दिन जितने बिल खुले मिले, उन्हें ताजा बिल कहा जाता है। सादा चुग्गा डालने के 1–2 दिन बाद उन्हीं बिलों में विष चुग्गा डालना चाहिए। विष चुग्गा बनाने के लिये ऊपर वर्णित विधि के अनुसार पहले सादा चुग्गा तैयार कर लें तथा उसमें निश्चित मात्रा में जिंक फॉस्फाइड पाउडर (20–25 ग्राम प्रति किग्रा. सादा चुग्गा) बुरक कर अच्छी तरह से मिलाना चाहिए ताकि विष पाउडर खाद्यान की तेलीय सतह पर एक जैसा चिपक जाये। इस चुग्गे की 6 से 8 ग्राम मात्रा प्रति बिल की दर चूहों के ताजे बिलों में खूब अंदर तक ढकेल देना चाहिए । इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि जहरीले दाने बिलों के बाहर नहीं बिखरें वरना इनसे अन्य पशु–पक्षी या वन्य जीव को हानि पहुँच सकती है। अगले दिन सूर्योदय से पहले खेत मे घूम कर मृत चूहों को इकट्ठा कर लें और उन्हें जमीन में गहरा दबा दें।

जिंक फॉस्फाइड चुग्गा देने के बाद भी कुछ चूहे (लगभग 30–40 प्रतिशत) नहीं मर पाते। ऐसी परिस्थिति में जिंक फॉस्फाइड का प्रयोग पुनः सफल नहीं रहता है क्योंकि दूसरी बार चूहे चुग्गे को छूते तक नहीं हैं। जिंक फॉस्फाइड चुग्गा देने के 4–5 दिन बाद बचे हुए चूहों के नियंत्रण के लिए ब्रोमेडियोलोन नामक विष चुग्गे को प्रयोग में लेना चाहिए ।

ब्रोमोडियोलोनः इसके लिए पहले क्षेत्र के सभी बिलों को पुनः बंद करावें और दूसरे दिन खुले बिलों में ब्रोमोडियोलोन नामक दवा का चुग्गा 15–20 ग्राम प्रति बिल की दर से डाले। ब्रोमोडियोलोन विष का एक किलोग्राम ताजा चुग्गा बनाने के लिए एक किलोग्राम अनाज में 20 ग्राम खाने के तेल (मूंगफली/सरसों/तिल) चुपड कर 20 ग्राम ब्रोमोडियोलोन विष सान्द्र पाउडर अच्छी तरह से मिलाना चाहिए ।

इस प्रकार जिंक फॉस्फाइड तथा ब्रोमोडियालोन के क्रमवार प्रयोग से खेतों में चूहों को प्रभावी तरीके से नियंत्रित किया जा सकता है और फसलों को चूहों से बचाया जा सकता है।

एक बात जो खासतौर पर ध्यान देने की है कि जहाँ तक हो सके चूहा नियंत्रण का कार्य छोटे क्षेत्र में न करके बहुत बड़े क्षेत्र मे सामूहिक रुप से करना चाहिए। अगर आपने सिर्फ छोटे–छोटे क्षेत्र में चूहा नियंत्रण किया तो इससे कोई फायदा नहीं होगा बल्कि नुकसान ही होगा क्योंकि पडोस के क्षेत्र से चूहे पुनः घुसपैठ शुरु कर देंगे व आपकी मेहनत बेकार हो जायेगी इसके लिए बेहतर यही होगा कि काफी बड़े क्षेत्र में चूहा नियंत्रण अभियान छेड़ें।

घरों एवं गोदामों में चूहा नियंत्रण

घरों, गोदामों व भण्डारण क्षेत्रों में चूहानाशी विष का प्रयोग हानिकारक होता है। घरों में चूहा नियंत्रण के लिए मुख्य रुप से दो प्रकार की रणनीति अपनायी जा सकती है। पहली नीति तो है बचाव की, जिसके तहत घरों में चूहों की घुसपैठ को रोका जाता है तथा अनाज का भण्डारण वैज्ञानिक तरीके से किया जाता है और दूसरी रणनीति चूहा नियंत्रण की है। इसमें बचाव वाली नीति अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है।

चूहों की संख्या कम करने के लिये घर के आसपास के क्षेत्रों को पूर्णतयाः स्वच्छ रखना चाहिए क्योंकि वहाँ जमा कूड़ा–करकट चूहों को आश्रय प्रदान करता हैं। घरों में उपयोग के लिए अनाज का भण्डारण अधिकतर कोठियों में ही किया जाता है। इसके लिए धातु की कोठियां ज्यादा अच्छी होती हैं, क्योंकि वे चूहों से पूरी सुरक्षा देती है। यदि कच्ची कोठियों में अनाज रखना हो तो ऐसी कोठियों को लीप कर उनके चौडाई के अनुरुप पत्थर पर खड़ा करना चाहिए, जिससे चूहे उसमें नीचे से बिल बनाकर न घुस सकें।

कोशिश यही होनी चाहिए कि घरों में चूहों का प्रवेश ही न हो सके। इसके लिए चूहों के प्रवेश के सभी संभावित मार्ग ठीक से बन्द कर देने चाहिए। गटर तथा नालियों के खुले मुँह के द्वारा चूहे घरों में प्रवेश करते हैं अतः उन पर मोटे तार की जालियां लगा देनी चाहिए। बहुधा फर्श के साथ दरवाजों के मध्य भाग को चूहे अर्द्ध चन्द्राकार रुप में कुतर कर अपना मार्ग बना लेते हैं, ऐसी अवस्था में दरवाजों पर धातु की पट्टिका लगा देने से चूहे उसे कुतर नहीं पायेगें। इसी प्रकार खिड़की, दरवाजे, रोशनदान इत्यादि अपने चौखट में ठीक तरीके से फिट होने चाहिए एवं सदैव बन्द रहें, सिर्फ आवश्यकतानुसार कम से कम ही खुले।

परन्तु चूहे यदि घर के अन्दर है तब इसके लिए चूहा पकड़ने वाले पिंजरों का प्रयोग करना अधिक सुरक्षित है। पिंजरों द्वारा पकड़े गये चूहों को जीवित नहीं छोड़े इन्हें पिंजरे सहित यदि पानी में 3–4 मिनट डुबो दें, तो वे स्वयं मर जायेंगे और मरने के बाद उन्हें जमीन में गाड़ दें।

यदि चूहों की संख्या अधिक है तो चूहानाशी विष का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए ब्रोमोडियोलोन (0.005 प्रतिशत) नामक चूहा नाशी विष का प्रयोग करना चाहिए। यह चूहों के लिए अत्यन्त प्रभावी है। यह विष बाजार में बने बनाये चुग्गे के रुप में जैसे, मोम चढ़ी टिकिया के रूप मे मिलता है। इस चुग्गे की 25–30 ग्राम मात्रा गोदामों में उन स्थानों पर रखें जहाँ चूहों का आवागमन अधिक हो। इस दवा को 2–3 दिन तक रखें, इसे शाम के समय रखें और सुबह चुग्गे को हटा दें, और पुनः शाम को रख दें। यह एक मध्यम असर कारक जहर है इसे खाने के 3–4 दिन बाद चूहे मरते हैं और 1.2 सप्ताह में क्षेत्र के अधिकतर चूहे नियंत्रित हो जाते हैं।

चूहानाशी विष के प्रयोग के समय सावधानियाँ

चूहानाशी विष तथा विष चुग्गा ताले बंद अलमारी मे रखें ताकि बच्चों की पहुंच से दूर रहे। विष चुग्गा खुली जगह अथवा हवादार कमरे में ही बनाना चाहिऐ। चुग्गा बनाने एवं बिलों में डालने हेतु प्रयोग में लाये गये बर्तन, लकड़ी की छड़ी अथवा पत्तों आदि को नष्ट कर देना चाहिए। खाली हुए डिब्बों को नष्ट करके जमीन में दबा देना चाहिए। पशु, पक्षियों, मुर्गियों तथा अन्य वन्य जीवों को ध्यान में रखते हुए विष चुग्गा सिर्फ बिलों के अन्दर गहराई में डालना चाहिए। नियंत्रण कार्यक्रम के बाद सभी मरे चूहों को एकत्रित करके जमीन में गहरा दबा देना चाहिए, क्योंकि इन्हें खाकर कुत्ते, बिल्ली, चील–कौवे तथा अन्य परभक्षी जीव अकारण ही मर सकते हैं।

पारम्परिक विधियों द्वारा घरेलू स्तर पर सुरक्षित अनाज भण्डारण

पूनम कालश एवं सविता सिंघल
कृषि विज्ञान केन्द्र, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

भारत एक कृषि प्रधान देश है। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या तथा किसान वर्ग की खुशहाली के लिये अधिक से अधिक अनाज उत्पादन अनिवार्य है परन्तु इसके साथ–साथ अनाज के सुरक्षित भण्डारण का भी उतना ही महत्व है। सर्वेक्षणों के अनुसार अधिकांश गांवों में कीट रहित अनाज भंडारण के गोदाम नहीं है तथा अनाज का उचित ढंग से भण्डारण न होने के कारण हर वर्ष कम से कम 10 प्रतिशत अनाज गोदामों में कीड़ों इत्यादि द्वारा नष्ट हो जाता है।

अनाज के उचित भण्डारण के लिये वातावरण का भंडारित बीज पर प्रभाव तथा बीज की श्वसन क्रिया की जानकारी होना अति आवश्यक है। श्वसन की क्रिया के परिणाम स्वरूप बीज में अनेक जैव–रासायनिक तथा भौतिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं जिसके कारण बीज की अंकुरण क्षमता क्षतिग्रस्त हो जाती है। घरेलु स्तर पर कीट एवं सूक्ष्म जैविक कारक खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता एवं पौष्टिकता में भारी कमी का मुख्य कारण है। इसके साथ–साथ ये कारक अनाजों की मात्रा में भी भारी कमी लाते है। कीटों और जैविक कारक अपने विषाक्त पदार्थों को उत्पादित कर अपने मलमूत्र से लोगों के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव डालते हैं।

खेती के कार्य में 60 से 70 प्रतिशत योगदान कृषक महिलाओं का रहता है एवं घर के अन्दर अनाज भंडारण तथा संरक्षण की मुख्य जिम्मेदारी महिलाओं की होती है। इसलिये सुरक्षित अन्न भण्डारण की पूर्ण जानकारी महिलाओं को होनी आवयश्क है। अनाज को मुख्यतः नुकसान निम्नलिखित कारणों से होता है।

1. नमी : अनाज के अन्दर की नमी तथा बाहर की नमी दोनों भण्डारित अनाज को हानि पहुँचाती है। नमी से अनाज में कीड़े का प्रकोप अधिक होता है क्योकि नमी उनकी वृद्धि के लिये अनुकूल होती हैं, नमी से अनाज सड़ जाता है तथा अंकुरण निकल आते हैं। दाने एक दूसरे से जुड़ जाते हैं और दुर्गन्ध आने लगती है तथा फफूँदी भी लग जाती है जिससे अनाज काला व सफेद पड़ जाता है।

2. कीड़े मकौड़े : कीड़े अनाज भण्डारों में अनाज के साथ ही रहते हैं और अनाज को बाहर और अन्दर से खाकर खोखला कर नुकसान करते हैं। इससे अनाज की मात्रा व पोषक तत्वों के गुणों को कम करते हैं और साथ ही साथ अनाज को अगली बीजाई के उपयुक्त भी नहीं छोड़ते क्योंकि कीड़े लगा अनाज का उगना असम्भव होता है।

3. चूहें: चूहें मनुष्य के स्वास्थ्य और खाघ सामग्री को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। गोदामों में चूहें अनाज को काटकर खाते है और जितना अनाज ये खाते है उससे कई गुणा अनाज काटकर बेकार कर देते हैं। ऐसा अनाज न तो उग सकता है और न ही खाने के योग्य रहता है इसलिये चूहों की रोकथाम जरूरी है।

परम्परागत तरीकों द्वारा अनाज का किफायती व सुरक्षित भंडारण

सुरक्षित भण्डारण के लिये कई पारम्परिक तरीकें आसानी से प्रयोग में लायी जाती हैं व काफी किफायती और वातावरण के अनुकूल है। ये प्रक्रियाएं आमतौर पर स्थानीय रुप से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित होती है। स्थानीय रुप से उपलब्ध पौधे और उनके उत्पादों से अनाजों का सुरक्षित भंडारण के लिए पुराने समय से इस्तेमाल में लाया जाता रहा है। आधुनिक तौर–तरीके की तुलना में परंपरागत तौर तरीके अधिक सस्ते एवं आसानी से उपलब्ध है। प्रकृति ने मानव को कई औषधि व निरोगी गुण वाली जड़ी बूटियाँ (नीम, हल्दी,तुलसी आदि), वनस्पति के रूप में प्रदान की है जिनका उपयोग अनाज के सुरक्षित भंडारण के लिए किया जा सकता है। घरेलू स्तर पर अधिकतम प्रयोग में लाए जाने वाली पारम्परिक तरीकों का विवरण इस लेख में किया गया है।

1. धूप में सुखाकर

यह भंडारण की बहुत आसान एवं टिकाऊ विधि है लंबे समय से इसका प्रयोग अनाज में नमी व कीटों के प्रजनन की रोकथाम के लिए किया जाता रहा है। इस विधि में कटाई के बाद अनाज को धूप में सुखाकर ठंडा करके लंबे समय के लिए उसे भंडारित कर देते है। इससे कीटों में होने वाली प्रजनन क्रिया रूक जाती है। यह विधि बड़े एवं छोटे दोनों स्तर के किसानो के लिए बहुत लाभदायी व प्रभावी है। यह प्रक्रिया अप्रैल, मई व जून के महीने में करने से किसी भी प्रकार के कीड़ों और कीटों पर काबू पाया जा सकता है।

2. नीम की पत्तियों का उपयोग

नीम की पत्तियों का इस्तेमाल कीटों व कीड़ों को भंडारित अनाज से दूर भगाने के लिए किया जाता रहा है। इसके लिए पेड़ से ताजी पत्तियों को जमा कर उन्हे छाया में सुखाकर सीधे अनाज के साथ मिलाकर, अनाज की पेटी को बंद कर दिया जाता है। यह विधि बहुत ही सस्ती, सुरक्षित एवं प्रभावी है।

3. हल्दी का उपयोग

प्रति किलों अनाज में 40 ग्राम हल्दी का चूर्ण का प्रयोग भी एक अच्छे विकल्प के रुप में किया जाता है। भंडारण से पहले अनाज को हल्दी के चूर्ण के साथ हल्के हाथ से रगड़ कर आधे घंटे के लिए धूप में सुखा देते हैं। कच्ची हल्दी का इस्तेमाल भी कीटों से सुरक्षा के लिए किया जाता है। इसके तेज गंध एवं

जीवनाशी, रोधीगुणों के कारण कीट अनाज से दूर रहते है। यह उपचार कीटों से लम्बें समय तक सुरक्षा प्रदान करता है और खाने की दृष्टि से भी सुरक्षित है।

4. मसालों का उपयोग

ग्रामीण महिलाओं द्वारा लाल मिर्च का प्रयोग भी खाद्य पदार्थों के सुरक्षित भण्डारण के लिए किया जाता रहा है। लहसुन के नाशीरोधी गुण के कारण कीड़ों के संक्रमण को कम किया जा सकता है। लहसुन के गुच्छों को चावलों की सतह में रखकर अनाज की पेटी को अच्छे से बंद कर देते है। लहसुन की गंध के कारण कीड़े पहुंच से बाहर हो जाते हैं, इसलिए अनाज और चावलों के भंडारण में लहसुन के गुच्छों को प्रयोग किया जाता है।

5. मीठे प्रकंद का उपयोग

50 किलोग्राम अनाज में 1 कि.ग्रा. मीठे प्रकंद का चूर्ण बनाकर कपड़े से बने छोटे थैले में भर कर उसे भंडारित अनाज के साथ पेटी में रख कर बंद कर दें।

6. नमक का प्रयोग

पुराने समय से ही नमक का उपयोग कवक एवं जीवाणुओं से बचाव के लिए किया जाता रहा है। नमक, कीड़ों के प्रवेश को रोकता है। 1 कि.ग्रा. लाल चने के साथ करीब 200 ग्राम नमक मिलाकर जूट से बने थैले में अनाज को इकट्ठा कर उसकी अच्छे से सिलायी कर दें, परन्तु यह विधि 4 या 5 महीने के लिये ही सहायक है। नमक का प्रयोग बड़े स्तर पर इमली के भण्डारण के लिए भी उपयोगी है। इस विधि में इमली को तोड़ने के बाद उसे मिट्टी से बने घड़ों के अंदर के परतों के रुप में एकत्रित कर दिया जाता है। इसके बाद 1 किलोग्राम इमली मे 10 ग्राम नमक मिला दिया जाता है। यह विधि नाशीजीवों के आक्रमण जैसे भृंग, पंतगें आदि के रोकथाम में सहायक है।

7. चूना से उपचार

चूना नाशीजीवों को नियंत्रित करने के लिए बहुत पहले से ही प्रयोग में लाये जाने वाली विधि है। यह बहुत ही सस्ती एवं आसान है। नाशीजीवों को नियंत्रित करने के लिए इस विधि में चूने का चूर्ण बनाकर उसे चावलों के साथ मिला दें फिर जूट से बने थैले में डालकर सूखे स्थान पर रख दें। इसकी महक से कीडें दूर भाग जाते हैं और उसकी प्रजनन प्रक्रिया को भी रोक देता है। साधारणतः 10 ग्राम चूने का इस्तेमाल 1 किलोग्राम अनाज को उपचारित करने में किया जाता है यह उपचार नाशीजीवों के आक्रमण से लम्बे समय तक बचाता हैं।

8. राख द्वारा नाशीजीवों का नियंत्रण

यह विधि नियमित रूप से किसानों द्वारा पुराने समय से इस्तेमाल में लायी जा रही है। इस विधि में दालों को भण्डारित करने के लिए मिट्टी से बने घड़े के अंदर राख भरकर बंद कर दें। छः महीने के बाद यह विधि फिर से

दोहराएं। अनाज को भी इसी प्रकार गाय के गोबर की राख के साथ मिलाकर भण्डारित करते है, जो कीट रोधी होती है।

9. माचिस की डिब्बियों का उपयोग

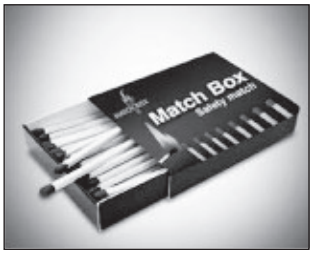

ग्रामीण महिलाओं द्वारा अनाज को भण्डारित करने में यह विधि बहुत पहले से इस्तेमाल में लायी जा रही है। इस विधि में सामान्यतः 6 से 8 माचिस की डिब्बियों को अनाज की पेटी की सतह में, बीच में व ऊपरी हिस्से में रखकर उसे अच्छे से बंद कर देते हैं। माचिस की तिल्लियों में फास्फोरस होता है जो कीड़ों के संक्रमण के रोकथाम में सहायक होता है। अधिक मात्रा प्रयोग में हानिकारक है

10. नीम के घोल द्वारा उपचारित जूट से बने थैले का उपयोग

अनाज का सुरक्षित भण्डारण करने के लिए जूट से बने थैलें काफी उपयोगी है। भण्डारण से पहले थैलों को नीम के घोल से उपचारित किया जाता है। नीम के घोल को तैयार करने की विधि 10 लीटर पानी में 10 प्रतिशत नीम के बीज का चूर्ण बनाकर, पोटली में बाँध कर पूरी रात पानी में डुबो कर रखें उसके बाद पोटली को निचोड़ कर आधे घण्टे के लिए थैलों को नीम के घोल में डाल देते हैं। थैले को हमेशा छाया में सुखाकर ही इसका इस्तेमाल अनाज भण्डारण के लिये करें। यह विधि एक वर्ष तक ही कीड़ों व कीटों से बचाव के लिए उपयोगी है। उपचारित जूट के बने थैलों का प्रयोग अनाज भण्डारण में बिना किसी भय के किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में 10 जूट थैले के लिये 2 से 8 लीटर नीम के बीज की आवश्यकता होती है।

भण्डारण के लिये स्थान का चुनाव

- भण्डारण स्थान आस–पास के स्थान से ऊँचा होना चाहिए। जहाँ दीमक का प्रकोप हो वहाँ भंडार गृह नहीं होने चाहिए।
- भंडार गृह की सतह चिकनी एवं गड्ढे रहित होनी चाहिए।
- भंडार गृह की दीवारों में किसी प्रकार की दरारें नहीं हो क्योंकि वे कीड़ों के प्रजनन का महत्वपूर्ण स्थान होता है।
- भंडार गृह की खिड़कियाँ बंद होनी चाहिए।
- भंडार गृह की छत में भी दरारें नहीं होनी चाहिए, जिससे छत से आने वाली नमी को रोका जा सके।

तालिका 1: भंडारित अनाज के प्रमुख हानिकारक कीट

क्र.सं.	हिन्दी नाम	सक्रंमित होने वाले अनाज
1.	आटा घुन	अनाज एवं अनाज उत्पादों, सूखे फलों
2.	दलहनी घुन	राजमा सहित विभिन्न प्रकार की दालें
3.	लोबिया घुन	दालें
4.	लोबिया भृंग	सोयाबीन सहित विभिन्न प्रकार के दालें
5.	दलहन भृंग	सोयाबीन एवं राजमा के अलावा विभिन्न प्रकार के दालें
6.	धान का शल्भ	चावल, मक्का, सोयाबीन, मूँगफली, सूखे मेवे, नारियल, आटा
7.	अनाज का भूरा तिलचट्टा	मक्का, गेहूँ
8.	उष्ण कटिबंधीय गोदाम कीट	चावल, मक्का, मूँग की दाल, सोयाबीन, मूँगफली, सूखे मेवे नारियल, आटा
9.	अनाज का चूरा शल्भ	चावल, मक्का, गेहूँ, सोरगम
10.	धान का भृंग	चावल, मक्का, गेहूँ, सोरगम, दालें
11.	आटा भृंग	सभी प्रकार की दालें व मसाले
12.	लाल घुन	सभी प्रकार की दाले व मसाले

अनाज को भंण्डारण में रखने से पहले सावधानियां

- अनाज को रखने से पहले गोदाम या कोठी की सफाई अच्छी तरह करें तथा कूड़ा करकट इत्यादि बाहर निकाल कर फैंक दें।
- गोदाम या कोठियों के फर्श, दीवार व छतों पर पायी जाने वाली दरारों, एवं सुराखों को सीमेंट से बन्द कर देना चाहिए।
- अनाज रखने से पहले कोठियों और गोदामों में सफेदी कर देनी चाहिए।
- अन्न संग्रहण के लिये नई बोरियां प्रयोग में लाएं। यदि बोरियां पुरानी हो तो उनकों मैलाथियान 50 के एक भाग व पानी के 500 भाग के घोल में 10 मिनट तक भिगोयें व बोरियों को छाया में सुखा लें तत्पश्चात् अनाज भरें।

अनाज को भण्डारण में रखते समय सावधानियां–

- अनाज को ढोने के लिये काम में लायी जाने वाली बैलगाड़ी, ट्रॉली, बुग्गी आदि को अच्छी तरह साफ करना चाहिए।
- अनाज को अच्छी तरह साफ करके सुखाना चाहिए। इसकी जांच दाने को दांत के नीचे काटने से की जाती है। यदि कट की आवाज आती है तो अनाज भरने के लिए तैयार है।

- सुखाने के बाद गरम अनाज का तुरन्त भण्डारण नही करें, ऐसा करने से कीड़े–मकोड़े की बढ़ोत्तरी का खतरा रहता है। अनाज को रातभर ठंडा करने के बाद भरें ।
- अनाज को खुला नहीं रखना चाहिऐ। खुले अनाज में धूल, कीड़े मकौड़े चूहों द्वारा नुकसान का डर रहता है। इस तरह से रखे गये अनाज का बचाव मुश्किल है।
- अनाज की भरी बोरियां सीधे जमीन व दीवार से सटाकर नहीं रखनी चाहिए। उन्हें लकड़ी के तख्तों व बांस की चटाई पर थोड़ी ऊँचाई पर रखें।
- बुखारी या कोठी में भी अनाज मोमजामें से ढककर बन्द कर दें, ताकि अनाज में नमी नहीं जा सकें।
- चने और दालों कों पशुओं से सुरक्षित रखने के लिये अनाज के ऊपर 7 से.मी. मोटी रेत की तह बनाएं।

भण्डारण में रखने के बाद सावधानियाँ

- अन्न संग्रहण के बाद भी समय–समय पर अनाज को देखते रहें, कहीं उनमें कीड़ें तो नहीं लग गये या खराब तो नहीं हो रहा है। यदि अनाज में ढेले बन गये हों या सफेद चूर्ण सा निकलता हो या अनाज का रंग बदल गया हो तो समझा जाता है कि अनाज खराब हो रहा है, ऐसी दशा में तुरन्त सावधानी बरतें। अनाज को जहां तक सम्भव हो सके धूप और हवा दिखाते रहना चाहिए।
- बरसात के समय अनाज को सुखाने के लिये गोदाम एवं कोठी से बाहर नहीं निकालना चाहिए तथा दरवाजे और खिड़कियां भी बन्द कर देनी चाहिए।
- यदि अनाज में कीड़े लग गये हो तो उनका समय पर नियन्त्रण करना चाहिए।

निष्कर्ष

खाद्य पदार्थों की सही गुणवत्ता को घरेलू स्तर पर बनाए रखने के लिये यह आवयश्क हो जाता है कि भण्डारण के विभिन्न वैज्ञानिक तरीकों को अपनाया जाए। ये सभी प्रयास सामग्री एवं विधि केवल भण्डारण के उद्देश्य से है परंतु प्रति वर्ष उपलब्ध होने वाले खाद्य सामग्री भण्डारण तभी संभव है जब भण्डारण घरेलू स्तर पर सही तरीके से हो ओर उनका भविष्य में इस्तेमाल वाणिज्यिक उद्देश्य से हो, इसलिये पर्यावरण अनुकूल सुरक्षित ओर प्रभावी भण्डारण को प्रोत्साहित किये जाने की आवयश्कता है। उपयुक्त सारे प्रयास को पुनः नये सिरे से अपनाकर उन्हें ओर प्रभावी बनाने की आवयश्कता है, जिससे भविष्य में आने वाली पीढ़ी लाभान्वित हो।

शुष्क क्षेत्र में औषधीय पौधों की खेती एवं उपयोग

ममता मीणा एवं मनीष चौधरी

कृषि विज्ञान केन्द्र,केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है। इसका पश्चिमी भाग जो कुल क्षेत्रफल का लगभग 61 प्रतिशत है, मरूस्थलीय या अर्द्ध मरूस्थलीय है और पूर्णतः वर्षा पर निर्भर करता है। यद्यपि यह क्षेत्र अद्वितीय संसाधनों से सम्पन्न है, परन्तु अल्पवर्षा, उच्च तापमान, तेज हवा की गति, उच्च वाष्पोत्सर्जन, निम्न मृदा उर्वरकता एवं जल धारण क्षमता के कारण यहाँ फसलों की उत्पादकता बहुत कम है। अतः इस क्षेत्र के किसानों को अपने आर्थिक विकास के लिए परम्परागत खेती के साथ–साथ औषधीय पौधों की खेती भी करनी चाहिए। औषधीय पौधों की खेती न केवल आर्थिक रूप से लाभकारी हैं बल्कि इसमें देश समाज तथा मानव मात्र का हित भी निहित है। इसके साथ–साथ यदि प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धतियों एवं संस्कारों को जीवित रखता है तब भी इनकी खेती की जाना अत्यावश्यक हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इसकी बढ़ती माँग को देखते हुए कृषकों को इसका पूरा लाभ उठाना चाहिए।

शुष्क क्षेत्र में उगाये जाने वाले औषधीय पौधे

1. शंखपुष्पी	2. गोखरू
3. सोनामुखी (सेनाय)	4. मुलेठी
5. गुगल	6. तुलसी
7. अश्वगंधा	8. धतुरा
9. इसबगोल	10. आँकड़ा
11. ग्वारपाठा (घृतकुमारी)	12. तुम्बा
13. गिलोय	14. जीवंती
15. सतावर	16. मेहंदी
17. आँवला	18. सदाबहार

औषधीय पौधों की खेती एवं उपयोग

शंखपुष्पी

उपयोग : शंखपुष्पी का वानस्पतिक नाम कॉनवोलवुलस प्लूरीकॉलीश है। शंख के समान आकृति वाले श्वेत पुष्प होने से इसे शंखपुष्पी कहते हैं शंखपुष्पी को समृतिसुधा भी कहते हैं। यह एक तरह की घास होती है

जो गर्मियों में अधिक फैलती है। शंखपुष्पी को मस्तिष्क व आँखों के टॉनिक के रूप में जाना जाता है। शंखपुष्पी की जड़ को अच्छी तरह से धोकर, पत्ते, डंठल, फूल, सबको पीसकर पानी में घोलकर मिश्री मिलाकर, छानकर पीने से दिमाग में ताजगी और स्फूर्ति आती है।

खेती

मिट्टी : रेतीली व रेतीली दुमट

बुवाई : बीज द्वारा

उर्वरक : 30 किग्रा. नत्रजन, 40 किग्रा. फॉस्फोरस और 30 किग्रा. पोटाश

निराई–गुड़ाई : बुवाई के 30–35 दिन बाद

बीमारी : कोई नहीं

कटाई : हर तीन महीने में

उत्पादन : एकल 22–25 क्विं./है, अन्तरशस्य – 10–12 क्विं./हैए मिलवां – 4–5 क्विं./है.

अश्वगंधा

अश्वगंधा का वानस्पतिक नाम विथेनिया सोमनीफरा है। अश्वगंधा एक शक्तिवर्धक रसायन है। अश्वगंधा एक श्रेष्ठ प्रचलित औषधि है, इसके गुणों को देखते हुए इस संजीवनी बूटी भी कहा जाता है।

उपयोग : यह शरीर की बिगडी हुई अवस्था (प्रकृति) को सुधार कर सुसंगठित कर शरीर का बहुमुखी विकास करता है। इसका शरीर पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। यह रोग–प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है और बुद्धि का विकास भी करती है। अश्वगंधा में एंटी एजिंग, एंटी ट्यूमर, एंटी स्ट्रेस तथा एंटी आक्सीडेंट के गुण भी पाये जाते हैं। यह चर्म रोग, खाज खुजली गठिया, धातु, मूत्र, फेफड़ों की सूजन, पक्षाघात, अल्सर, पेट के कीड़ों, तथा पेट के रोगों के लिए यह बहुत उपयोगी है। खांसी, साँस का फूलना, अनिद्रा, मूर्छा, चक्कर, सिरदर्द, हृदय रोग, शोध, शूल, रक्त कोलेस्ट्रॉल कम करने में स्त्रियों को गर्भधारण में और दूध बढ़ाने में मदद करता है

खेती

जलवायु : शुष्क

मिट्टी : रेतीली व रेतीली दुमट

उन्नत किस्में : जवाहर अश्वगंधा 20, जवाहर अश्वगंधा 134

बीज दर : 6–8 किलो / हैं.

बुवाई समय : जुलाई – अगस्त

उर्वरक : 8–10 टन गोबर की खाद

कटाई : बुवाई के 150–160 दिन बाद जब पत्तियाँ पीली पड़ जाए

उत्पादन : 5–6 क्विं. / है. सुखी जड़, 50–60 किलो / है. बीज

ग्वार पाठा

उपयोग : घृत कुमारी या ग्वार पाठा का वैज्ञानिक नाम एलोवेरा है। एलोवेरा तना रहित या बहुत छोटे तनों के साथ तेजी से फैलने वाला पौधा है, जो लम्बाई में 60 से 100 सेमी तक बढ़ता है। यह 5000 वर्ष पुराना औषधिय पौधा है जिसकी 250 उपजातियाँ है। इनमें से कुछ ही औषधीय गुण वाली होती है जिनमें सबसे प्रभावी प्रजाति है। हमारे शरीर को 21 एमिनो एसिड़ की जरूरत होती है, जिसमें से 18 केवल एलोवेरा से मिल जाते है। एलोवेरा की पत्तियां घनी और चमकदार होती है। एलोवेरा को एक्स्ट्रेक्ट का उपयोग कॉस्मेटिक प्रोडक्ट बनाने और आयुर्वेदिक दवाईयां बनाने में होता है। इसमें 18 धातु, 15 एमीनों एसिड और 12 विटामिन मौजूद होते है। इसको त्वचा पर प्रयोग भी लाभप्रद होता है। इसकी काँटेदार पत्तियों को छीलकर, जलने पर, अंग कहीं से कटने पर, अंदरूनी चोटों पर ऐलोवीरा अपने एंटी बक्टैरिया और एंटी फंगल गुण के कारण घाव को जल्दी भरता हैं तथा यह रक्त में शर्करा के स्तर को बनाए रखता है।

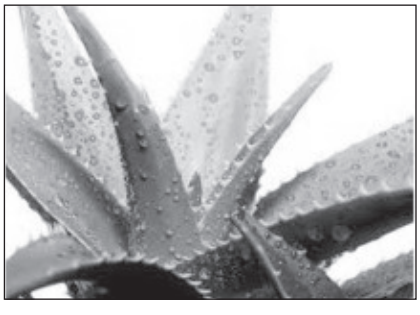

जलवायु : शुष्क, अर्द्धशुष्क

मिट्टी : उचित जल निकास वाली रेतीली व रेतीली दुमट, पी.एच. 7.5 – 8.5

बीज दर : 28000–34000 सकर्स / है.

बुवाई का समय : जुलाई–अगस्त

उर्वरक : 10–15 टन सड़ी गोबर की खाद

कटाई : दो साल के बाद तथा 3 से 4 बार हर साल

उत्पादन : असिंचित 10–15 टन / है. और सिंचित 30–35 टन / है.

गोखरू

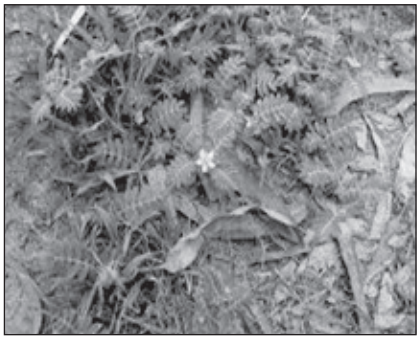

उपयोग : मधुमेह व कैंसर की दवाइयों में

वानस्पतिक नाम : ट्रायबूलस टेरेसट्रीस है।

मिट्टी : सभी प्रकार की

बीज दर : 4 किग्रा / है.

बुवाई : वर्षा के समय बीज द्वारा

उत्पादन : 20–25 क्वि. / एकड सूखे फल

गुगल

उपयोग : टी.बी., कैंसर व अन्य कई प्रकार की दवाईयों में गोंद का प्रयोग मोटापा, गठिया, जोड़ों की सूजन उच्च कोलेस्ट्रॉल व मूत्र रोग की गडबड़ी में।

वानस्पतिक नाम : कॉमीफोरा विटयी है।

मिट्टी : सभी प्रकार की, पी.एच 6–8

बुवाई : वर्षा ऋतु में पौध रोपण द्वारा

उत्पादन : 800 ग्राम गोंद / पेड़

शतावरी

उपयोग : शक्तिवर्धक, शुक्रदौर्बल्य, श्वेतप्रदर, प्रसव पश्चात् दुग्धवर्धक होती है। प्रसूता माता को यदि दूध नहीं आ रहा हो या कम आता हो तो शतावरी की जड़ों के चूर्ण का सेवन दिन में कम से कम चार बार

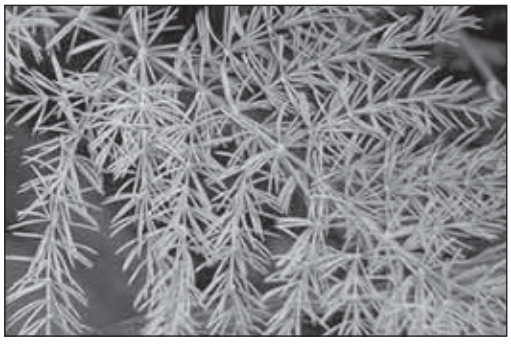

अवश्य करना चाहिए। शतावरी काफी ठंडी होती है इसलिए यह बुखार, जलन और पेट के अल्सर को दूर करती है। शतावरी की ताजी जड़ के रस में बराबर मात्रा में तिल का तेल मिलाकर पका ले। इस तेल को माइग्रेन जैसे सिरदर्द में लाभ मिलता है।

वानस्पतिक नाम : ऐस्पेरेगस रेसीमोसस

जलवायु : तापमान 10–45 डिग्री सेन्टीग्रेड, वर्षा 250 से.मी.

मिट्टी : रेतीली व रेतीली दुमट

बीज दर : 10–12 किग्रा / हैं

बुवाई : फरवरी–मार्च में शकर्स द्वारा

उर्वरक : 30 किग्रा. नत्रजन, 40 किग्रा. फॉस्फोरस और 30 किग्रा. पोटाश

सिंचाई : हर महीने

कटाई : बुवाई के एक साल बाद

उत्पादन : 35–50 क्वि. / है.

सनाय

उपयोग : सनाय मुख्यतयाः रेचक का कार्य करती है। इसकी पत्तियों का मुख्य उपयोग पेट की बीमारीयों से सम्बंधित दवाई बनाने के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग टाइफाइड, पीलिया, बुखार, हैजा आदि में भी किया जाता है।

वानस्पतिक नाम : केसीया अगस्तिफोलिया

मिट्टी : रेतीली व रेतीली दुमट

बीज दर : 8–10 किग्रा / हैं

बुवाई : वर्षा ऋतु में छिटकवां विधि से

कटाई : बुवाई के तीन से चार महिने बाद

उत्पादन : 400 किलोग्राम सुखी पत्तियां

गिलोय

उपयोग : गिलोय का तना, जड़, पत्ती, फल सभी का औषधीय रूप में प्रयोग होता हैं। लेकिन इसका तना सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होता हैं यह ज्वर, चिकनगुनियां, डेंगू स्वाइन फ्लू और बर्ड फ्लू की रामबाण दवा होती है। इसके अलावा मधुमेह, त्वचा रोग, मस्तिष्क रोग, पीलिया इत्यादि में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

वानस्पतिक नाम : टिनोस्पोरा कोर्डिफोलिया

बुवाई : यह एक लता है इसलिए इसके पौधे को किसी सहारे की जरुरत होती हैं। नीम का पेड़ इसके लिए सबसे उत्तम सहारा होता है। वर्षा ऋतु में नीम के पेड़ के पास इसे कलम अथवा बीज द्वारा बोया जाता है।

उत्पादन : गिलोय के तने को 3–4 इंच बड़े टुकड़े करके बेचा जाता है इसके तने का उत्पादन 8–10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होता है

गिलोय की खेती करने से आर्थिक लाभ तो होता ही है, साथ ही जो सहारा पौधे लगाये जाते हैं उनसे भी आमदनी होती है गिलोय की छाँव में छायापसंद औषधीय पौधों की खेती की जा सकती है।

शुष्क क्षेत्रों मे पशुधन उत्पादन एंव प्रबन्धन

अरुण कुमार मिश्रा
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुंसधान संस्थान, जोधपुर

भारतीय कृषि मुख्यतः वर्षा पर आधारित है। देश की कुल खेती के अन्तर्गत 142.5 मिलियन हेक्टेयर भूमि में से लगभग 97 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल शुष्क है तथा वर्षा पर निर्भर रहता है। आने वाले समय मे सिंचाई के समुचित प्रयासों के बावजूद भी लगभग 50 प्रतिशत कृषि भूमि पर की जाने वाली खेती वर्षा पर ही निर्भर रहेगी। सिंचित क्षेत्र में आई हरित क्रान्ति देश की बढती हुई जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराने मे कुछ हद तक ही सफल सिद्ध हुई है। आने वाले समय मे निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या एवं सिमटती कृषि योग्य भूमि व बदलते हुए वातावरण में अगर हम दूसरी हरित क्रान्ति की अपेक्षा करते हैं तो यह सिर्फ शुष्क क्षेत्रों से ही अपेक्षित हैं। शुष्क क्षेत्रों की मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं।

- अधिक पशु संख्या तथा उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि ।
- जल संसाधनों की कमी।
- मृदा की घटती उर्वरता एवं अनुत्पादकता।
- मृदाओं का उथलापन एवं नमी संचयन की कम क्षमता।
- फसलावधि के दौरान बीच–बीच में सूखे की स्थिति उत्पन्न होना।
- कृषकों की दयनीय आर्थिक स्थिति, एवं
- पशुओं के लिए चारे एवं दाने की कमी।

शुष्क क्षेत्रों के किसानों की आजीविका में पशुधन का सदियों से अहम योगदान रहा है, जो असमान्य वर्षा एवं आपदा के दौर में किसानों की आर्थिक जरुरतों को पूरा करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

शुष्क क्षेत्रों में प्रचलित पशुधन उत्पादन की प्रणालियाँ

शुष्क क्षेत्रों में प्रचलित पशुपालन की प्रणाली, सिंचित क्षेत्रों मे प्रचलित पशुधन उत्पादन प्रणाली से सर्वथा भिन्न हैं। इस क्षेत्र में पशुपालन की प्रणाली किसानों की सामाजिक–आर्थिक मान्यताओं एवं रोजमर्रा की जरुरतों तथा पशुओं की संख्या एवं जाति तथा चारे की उपलब्धता पर निर्भर करती हैं। सिंचित क्षेत्रों में जहाँ कृषि की प्रधानता एवं प्रति व्यक्ति पशुओं की संख्या कम है, वहीं शुष्क क्षेत्रों में पशुपालन की प्राथमिकता एवं प्रति व्यक्ति पशुओं की संख्या अधिक है। शुष्क क्षेत्रों में प्रचलित पशु उत्पादन की प्रणाली को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. परम्परागत पशु उत्पादन पद्धति (ग्रामीण क्षेत्रों में)
2. व्यवसायिक पशु उत्पादन पद्धति (शहरों एवं कस्बों के आस–पास)

शुष्क क्षेत्रों मे पशुपालन की प्रमुख समस्याएं

शुष्क क्षेत्रों में पशुधन की निम्न उत्पादकता का प्रमुख कारण चारे की अपर्याप्त उपलब्धता एवं उसकी निम्न गुणवत्ता तथा चराई के कम संसाधन एवं सुविधाएं हैं। परम्परागत पशु उत्पादन पद्धति में पशु मुख्यतः चराई पर निर्भर रहते हैं। केवल उत्पादकता वाले पशुओं (बैल व दुधारु पशुओं) को फसलों के उत्पादों जैसे ज्वार/बाजरा की कड़वी, पुवाल, सूखी घास, आदि दिया जाता है। दुधारु जानवरों को 0.5–1.0 किलो प्रति पशु के हिसाब से दाना दिया जाता है। भेड़ बकरियों को दिन के समय चरने के लिए भेज दिया जाता है। जंगल एवं परती भूमि पर चरना ही इनकी उदरपूर्ति का मुख्य साधन हैं। पशु आहार में नमक कभी–कभी केवल बैलों को ही दिया जाता हैं। पशु पालकों द्वारा खनिज मिश्रण न देने के कारण पशु समय पर गर्भित नहीं हो पाते हैं तथा उनकी उत्पादकता भी कम हो जाती है पशुओं को बन्द बाड़ों एवं कच्चे घरों में बांधा जाता है। पीने के लिए नदी, तालाब या पोखर का पानी ही पशुओं को उपलब्ध होता है, जिससे जानवरों को अन्तः एवं बाह्य परजीवियों से पीड़ित देखा गया है। पशु चिकित्सा सुविधाओं का भी अभाव है तथा अधिकांश गाँवों में बीमारियों से बचाव हेतु टीकाकरण भी नहीं हो पाता हैं। अधिकांश पशुपालकों के अशिक्षित होने के कारण पशु उत्पादन के उन्नत तकनीकी ज्ञान का भी इन क्षेत्रों में अभाव है।

पशुपालन की समस्याओं का समाधान

शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाले पशुधन में गाय, बकरी, भेड़ व ऊँट उत्तम नस्ल के हैं। इन पशुओं से अधिक से अधिक उत्पादन लेना इनके उचित प्रबंधन पर निर्भर करता है तथा इनका प्रबंधन देश के अन्य जलवायु वाले पशुधन से अलग है। यहाँ पर पशुओं के लिए पानी, दाना व चारे की भारी कमी रहती है अतः पशुपालकों को अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए इन पशुओं का वैज्ञानिक आधार पर प्रबंधन करना होगा। पशुधन की समस्याओं का समाधान अधिक से अधिक चारे की उपलब्धता एवं पौष्टिकता बढ़ाकर, पशुओं का नस्ल सुधार, पशु रोगों से रोकथाम एवं उचित बाजार व्यवस्था करके ही किया जा सकता है।

चरागाह का विकास

शुष्क क्षेत्रों में चरागाह पशुओं के भोजन का मुख्य स्त्रोत हैं। लेकिन पशुओं की संख्या अधिक होने एवं अव्यवस्थित चराई से चरागाहों की स्थिति सोचनीय हो गयी हैं। जिसे वैज्ञानिक तकनीक का प्रयोग कर अधिक से अधिक उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता है। अनुसंधान एवं प्रदर्शनों से यह निष्कर्ष निकला है, कि अंजन घास के एक हेक्टेयर चरागाह पर 5 भेड़ें पाली जा सकती हैं जबकि सुरक्षित चरागाह पर 2–3 भेड़ें और असुरक्षित चरागाह पर केवल एक भेड़ प्रति हेक्टेयर ही वर्ष भर चराई जा सकती है। यदि चरागाह क्षेत्र को कुछ समय के लिए चराई से बचाया जाए तो अनुपयोगी खरपतवार और एक वर्षीय घासों की जगह बहु–वर्षीय तथा अत्यंत उत्पादक घासें पैदा की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त इन चरागाहों मे दलहनी घासों तथा चारा एवं ईंधन वाले वृक्षों को उगाकर उनकी उत्पादकता तथा गुणवत्ता दोनों को बढ़ाया जा सकता है। साथ ही पौष्टिक हरे चारे की उपलब्धता 3–4 महीने के स्थान पर 7–8 माह तक बढाई जा सकती है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर मे विशिष्ट कृषि व्यवस्था भी तैयार की गई है व गोचर/चरागाह व्यवस्था के कुछ उपाय करके घासों का उत्पादन बढाया जा सकता है। एक पूर्ण विकसित चरागाह से लगभग 30–35 क्विं. प्रति हेक्टेयर सूखा चारा उपलब्ध हो सकता है जिसमें लगभग 40–50 पशुओं को 100 हेक्टेयर चरागाह क्षेत्र मे पोषण हेतु रखा जा सकता है।

पश्चिमी राजस्थान में चरागाह क्षेत्र में खेजड़ी वृक्षों की उपलब्धता पशुओं के लिये छाया व इसकी पत्तियों के चारे में मिलाकर देने से चारे की पौष्टिकता बढती है, बकरी व भेड़ जैसे छोटे पशुओं के लिए यह एक अत्यंत पौष्टिक चारा है व एक पूर्ण विकसित खेजड़ी वृक्ष से लगभग 15 किलो पत्तियाँ जिसे स्थानीय भाषा मे ''लूंग'' कहा जाता है उपलब्ध हो सकती है। कुछ चरागाह क्षेत्र मे देशी बेर की झाड़ियाँ ''बोरडी'' सर्दी के मौसम में इसकी पत्तियाँ ''पाला'' जो की एक प्रोटीन युक्त चारा है, बकरी व भेड़ के लिए उपयुक्त चारे का स्त्रोत है। जिसकी उत्पादकता लगभग 125 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर ली जा सकती है साथ ही ऐसे वृक्ष व झाडियों की प्रजातियाँ भी उपलब्ध हैं जो चरागाह क्षेत्र में विकसित की जा सकती हैं और साथ में इस क्षेत्र में ज्यादा वायुगति से मिट्टी के बहाव में रोकथाम कर सकते हैं।

वन-चरागाह व्यवस्था

इस व्यवस्था में घास की किस्मों के साथ ऐसे पेड़ लगाये जाते हैं जिनकी पत्तियाँ चारे के रूप में पशु आहार के उपयोग में ली जाती हैं। यह व्यवस्था उन सभी शुष्क क्षेत्र में अपनायी जानी अर्थपूर्ण है, जहाँ वर्षा 300 मि.मी. या उससे कम होती है या उस क्षेत्र में जहाँ पथरीली व निम्नस्तर की जमीन उपलब्ध है। ऐसे क्षेत्र के लिए अकेशिया सेनेगल (कुमट), अकेशिया टोर्टीलिस, हार्डविकिया बायनाटा जैसे पेड़, बेर की झाड़ी में बोरडी जिजीफस न्यूम्यूलेरीया, जिजीफस रोटन्डीफोलिया। शुष्क क्षेत्र में घास जैसे सेंकरस सोटिजिरस (धामण) व सेन्करस सिलियोरीस (अंजन) साथ लगाये जा सकते हैं। अंजन पेडों की पत्तियाँ व अंजन घास व्यवस्था ने घास व पत्तियों का उत्पादन 9 वर्षों तक शोध के बाद यह पता चला है कि घास उत्पादन लगभग 13 क्विंटल प्रति हेक्टेयर व अंजन पेड़ों से पत्तियाँ लगभग 6.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त की जा सकती हैं व कुल 15 क्विंटल चारे उत्पादन व्यवस्था में लगभग 4 भेड़ों को वर्ष भर प्रति हेक्टेयर खिलाया जा सकता है।

पशु पोषण

पशुपालन व्यवस्था में आर्थिक निरन्तरता बनाये रखने के लिए संतुलित पशु पोषण अति महत्वपूर्ण है। पश्चिमी राजस्थान में अकाल लगभग हर दो साल के अंतराल में आ ही जाता है व अतिशुष्क क्षेत्र जैसे बाड़मेर, जैसलमेर व बीकानेर जिलों में अकाल दो या अधिक वर्षों तक निरंतर बना रहता है। अकाल का सीधा असर पशु उत्पादन पर होता है व पशु पोषण की समस्या गंभीर हो जाती है। मरू क्षेत्र में वर्ष के अधिकतर महीनों में हरे चारे का अभाव रहता है, इस दौरान मवेशी का पेट भरने के लिए मुख्य आहार रेशेदार सूखी बाजरा कुत्तर, खाखला इत्यादि ही होता है। जिससे पशु में प्रोटीन, लवण व विटामिनों की कमी हो जाती है। अतः इन कमियों को पूरा करने के लिए पशुपालकों को पशुओं के आहार प्रबंधन की निम्नलिखित जरूरी बातों का ध्यान रखना होगा।

अपारम्परिक आहार स्त्रोतः शुष्क क्षेत्र में अपारम्परिक आहार बहुतायत में उपलब्ध है जैसे तुम्बे की खल, अंग्रेजी बबूल फली चूरा, रायड़े की खल आदि को 20 से 30 प्रतिशत की मात्रा में बाँटे (दाने) में मिलाकर खिलावें। इससे उत्पादन लागत में 20 से 25 प्रतिशत तक कमी की जा सकती है व पशु स्वस्थ रहता है।

भूसे का यूरिया उपचारः भूसे को यूरिया से उपचारित कर पौष्टिक बनाने के लिए सौ किलो सूखी बाजरा कुतर, खाखला या भूसा/पुआल को 4 किलो यूरिया व 50 लीटर पानी से उपचारित करते हैं। यूरिया

उपचार से चारे की पौष्टिकता एवं पाचकता दोनों बढ़ जाती है। इसमें प्रोटीन की मात्रा 7–8 प्रतिशत तक बढ़ कर जाती है, जो पशु को प्रोटीन के कुपोषण से बचाती है।

अपारम्परिक साइलेज: मरूक्षेत्र में उपलब्ध सूखा चारा जैसे भूसा, कड़बी सूखी पत्तियाँ, बचे हुए पदार्थ इत्यादि से 'साईलेज' बनाने को गैर–पारम्परिक साइलेज विधि' द्वारा सूखे चारे का पौष्टिकीकरण करते हैं। यह साइलेज संस्थान में दुधारू थारपारकर गायों को समय–समय पर खिलाया गया है, जिसे गायों ने बड़े चाव से खाया है व दुग्ध उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी पायी गई। काजरी द्वारा विकसित यह तकनीक सरल एवं सस्ती है। सूखे चारे की जैविक प्रक्रिया से यह साइलेज बनाया जाता है। इस प्रक्रिया में सूखे चारे में नमी की कमी को रातभर पानी (ढाई गुणा पानी) में भिगोकर पूरा किया जाता है व 2 प्रतिशत यूरिया और मोलोसीस (शीरा) या पशुओं को खिलाने वाला गुड़ (10 प्रतिशत) जैसे पदार्थों से चारे में प्रोटीन और ऊर्जा की मात्रा बढाई जाती है तथा खट्टी छाछ (10 प्रतिशत) के उपयोग से जरूरी बैक्टीरिया प्राप्त होते हैं। 45 दिन बाद साइलेज पशुओं को खिलाने के लिए तैयार हो जाता है।

पूरक आहार से पशुपोषण

संतुलित पशुपोषण हेतु चरागाह व्यवस्था पर निर्वाह करने वाले पशुओं को पूरक आहार देना आवश्यक है। पूरक पोषण हेतु ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन्स व मिनरल स्त्रोतों को अलग–अलग या मिश्रण रूप मे संतुलित दाने के रूप में पशुओं को खिलाया जा सकता है। संतुलित दाने की मात्रा चरागाह से उपलब्ध चारे की मात्रा, गुणवत्ता व पशु उत्पादन क्षमतानुसार निश्चित की जाती है जो कि गाय, भैंस में लगभग 3 किलोग्राम से 8 किलोग्राम रह सकती है व भेड़/बकरियों में यह मात्रा 200 ग्राम से 500 ग्राम तक की जा सकती है। पूरक पोषण हेतु प्रचलित व अप्रचलित आहार अवयवों का सम्मिलित उपयोग करते हुए यूरिया–शीरा व खनिज मिश्रण या इनके ब्लॉक्स भी बनाये जाते हैं, जो पशुओं को 300–500 ग्राम मात्रा में प्रति गाय, भैंस व 50–100 ग्राम प्रति भेड़–बकरी को खिलाये या चटवाये जा सकते हैं। इस पूरक आहार व्यवस्था को आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति हो सकती है व पशु उत्पादन व्यवस्था व स्वास्थ ठीक रह सकता हैं।

पशु आहार बट्टिका का प्रयोग

काजरी द्वारा विकसित या बाजार में उपलब्ध राजस्थान को ऑपरेटिव डेयरी फेडरेशन (आर.सी.डी. एफ.) पशु आहार बट्टिका पूरक पौष्टिक आहार के रूप में मवेशियों में आवश्यक तत्व तथा प्रोटीन की कमी दूर करती है। दो किलो वजन की एक बट्टिका पशु के लगभग एक सप्ताह तक चाटने के काम आती है।

संपूर्ण पशुआहार व्यवस्था

चरागाह से चारा उत्पादन व गुणवत्ता की कमी व पूरक आहार के आयोजन में कठिनाई को देखते हुए वैज्ञानिकों ने संपूर्ण आहार की संकल्पना तैयार की जिसमें, घास चारा अथवा मुख्य फसलों से प्राप्त उप–उत्पाद जैसे कड़बी, पराल, गेंहू–भूसा आदि के साथ पूरक आहार में सम्मिलित घटकों को एक साथ मिलाया जाता है व इस संपूर्ण मिश्रण को संपूर्ण मिश्रित आहार अथवा संपूर्ण आहार ब्लॉक्स के रूप में पशुओं को खिलाया जाता है।

संपूर्ण पशुआहार बनाने की विधि

संपूर्ण पशुआहार बनाने हेतु घास चारा व अन्य पशु आहार स्त्रोत, उन क्षेत्रों से जहाँ चारा पशुधन की आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपलब्ध है, मंगवाना लाभदायक हो सकता है। पशु आहार में घास चारा व पोषक दाना बनाने में जो स्त्रोत उपयोग लिए जाते हैं, यह सभी उस क्षेत्र में उपलब्धता व आर्थिक दृष्टि के अनुसार सस्ते भाव को देखते हुए इकटठे् किए जा सकते हैं। साथ ही क्षेत्र में प्रचलित पशुओं की खान पान व्यवस्था व स्त्रोतोनुसार संतुलित आहार–विभिन्न चारा व पशु दाने के स्त्रोत से बनाये जाते हैं। इन सब स्त्रोतों को पिसवाकर व घास चारों को भी 2–4 से.मी. टुकडों में कटवाकर मिश्रण रूप में जानवरों को दिया जाए तो उसे संपूर्ण पशु आहार कहा जाता है। संपूण मिश्रित आहार विशिष्ट क्षेत्र अनुरूप बनायें जा सकते हैं ब्लॉक बनाने हेतु दाब द्वारा संचालित समुचित दाब यन्त्रों का उपयोग किया जाए तो लगभग 2 कि. ग्रा. से 10–12 कि. ग्रा. तक संपूर्ण मिश्रित पशु आहार के ब्लॉंक बनाये जा सकते हैं। संपूर्ण पशु आहार में सम्मिलित अप्रचलित फसल उत्पादों की अधिकतम उचित मात्रा नीचे दी गई हैं।

फसल उत्पाद	सम्पूर्ण आहार में मात्रा (प्रतिशत)
सूखी घास	30–50
गेहूँ भूसा/तूड़ी	45–50
चावल भूसा	40–50
बाजरा कड़बी	50–60
तुम्बे की खल	15–25
रायड़े की खल	10–20
अंग्रेजी बबूल की फली का चूरा	10–20
ग्वार कोरमा	10–20
ज्वार कड़बी	30–40
मसूर चारा	30–40

नस्ल सुधार

प्रकृति की विपरीत परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखने वाली यहाँ की प्रमुख पशु नस्लें निम्न हैं:

गाय : थारपारकर, राठी, काकरेज व नागौरी

भेड़ : मारवाड़ी, चोकला, नाली, पुगल, सोनाड़ी व जैसलमेरी

बकरी : मारवाड़ी व सिरोही (परबतसरी)

ऊँट : बीकानेरी व जैसलमेरी

नस्ल सुधारने के लिए सर्व प्रथम आवारा देशी साण्डों को बधिया करना होगा, जिससे अवांछित प्रजनन को रोका जा सके। गाय या भैंस जैसे ही गर्मी में आए तुरन्त उसे कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र अथवा अच्छी नस्ल के सांड के पास ले जाकर गर्भाधान करा दें, जिससे पैदा होने वाली संतानें अच्छी नस्ल की होगी और उनसे उत्पादन भी अच्छा होगा। अच्छी नस्ल के सांड या तो प्रशासन द्वारा किसानों को उपलब्ध करायें जाए या प्रत्येक गाँव के पशुपालक संगठित होकर स्वयं सहायता समूह बनाए जिससे प्रत्येक गाँव में नस्ल सुधार के लिए सांड उपलब्ध हो सकें।

पशु स्वास्थ्य प्रबंधन

एक स्वस्थ पशु ही अधिकतम उत्पादन दे सकता है। अतः पशुपालकों को बीमारियों को चिकित्सा पर अधिक खर्च करने की अपेक्षा ''चिकित्सा से अच्छा बचाव'' कहावत का पालन करना चाहिए। शुष्क क्षेत्रों में कुपोषण से पीड़ित पशुओं में होने वाली बीमारियों से बचाव के लिए समय–समय पर टीका लगवायें।

प्राथमिक चिकित्सा: प्राथमिक चिकित्सा का मतलब किसान द्वारा बीमार पशु का घरेलू उपचार करना जिससे कि बीमारी आगे न बढ सके। प्राथमिक चिकित्सा के कुछ नुस्खे नीचे वर्णित हैं।

- आफरा होने पर पशु के बायें पासू पर तारपीन के तेल में मीठा तेल मिलाकर जोर से मालिश करें। पशु को इस तरह खड़ा करें कि उसके अगले पैर ऊँचाई पर रहें। पशु को पिसा कोयला, काला नमक, अदरक या हींग और सरसों खिलाने से फायदा होगा। चिकित्सक की सलाह से बलोटिनेक्स/टिमपोल/बलोटासील इत्यादि आवश्यकतानुसार दें।
- पशुओं के खुले घाव को लाल दवा (पोटाशियम परमेगनेट) से धोवें
- घाव में उपस्थित कीड़ों को मारने/निकालने हेतु तारपीन के तेल का प्रयोग करें।
- घाव को भरने व रोगाणु के सक्रमंण से रोकने हेतु पोवीडोन आयोडिन का प्रयोग करें।

बाह्य व आन्तरिक परजीवियों से सुरक्षा

पशुओं में परजीवी परोक्ष व अपरोक्ष रूप से हानि पहुँचाते हैं, अतः इनको रोकने के लिए समय–समय पर पशु को परजीवी नाशक दवा पिलानी चाहिए जैसे की एलबेन्डाजोल/फैनबेन्डाजोल/क्लोसेन्टोल इत्यादि। दो वर्ष में कम से कम 3 बार दवा पिलावें। बाह्य परजीवियों को रोकने के लिए पशुओं पर तरल परजीवी नाशक सायपरमेथ्रिन (10 प्रतिशत) को एक लीटर पानी में 1–2 मि.ली. के हिसाब से मिलाकर पशु पर छिड़काव करें। पशु के बाड़े में 4 प्रतिशत एन्डोसल्फॉन पाउडर छिड़कने से परजीवियों से काफी हद तक छुटकारा पाया जा सकता है। आवास की धुलाई सप्ताह में कम से कम एक बार जीवाणु–नाशक घोल से करनी चाहिए।

पशु आवास व सफाई व्यवस्था

पशुओं का आवास अधिक से अधिक खुला होना चाहिए, ताकि बाड़े के अन्दर वायु प्रवाह बना रहें। बाड़े का लम्बवत् अभि–विन्यास पूरब–पश्चिम दिशा में रखना चाहिए, ताकि पशुओं को ग्रीष्म तनाव से बचाया जा सके। पशु आवास की स्वच्छता पशुओं को स्वस्थ रखने में सहायक सिद्ध होती हैं। पशुओं के

चरागाह में विशेषकर ग्रीष्म मौसम के दौरान छायादार पेड़ या कोई शेड पशुओं के लिए होनी चाहिए। बाड़े के अन्दर प्रत्येक पशु को उचित स्थान मिलना चाहिए। किसी भी बाड़े में औसत से अधिक घनत्व न हो। शीत ऋतु के दौरान बाड़े के चारों तरफ बोरे या अन्य कपड़े आदि के पर्दे बनाकर लटकाने से पशुओं को शीत के प्रकोप से बचाया जा सकता है। पशुओं के मलमूत्र को बाड़े से बाहर ले जाकर नाली से निकासी कर एक गड्ढे में दबाना चाहिए, ताकि उसका खाद बनाया जा सके।

पशु उत्पाद विपणन व्यवस्था

यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। मुख्य पशु उत्पाद दूध, घी, नर भेड़ व बकरी इत्यादि। इसके लिए पशु पालक समूह बनाकर अपने उत्पाद मण्डी पहुँचायेगा तो ज्यादा अच्छे भाव मिलेंगे व मुनाफा अधिक मिलेगा। अतः किसानों को बाजार की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है।

सहकारिता एवं जनसहभागिता का विकास

शुष्क क्षेत्रों में बहुत ही कम किसान पशुपालन को व्यवसाय के रुप में अपनाते हैं। अतः पशुपालन के समग्र विकास को साकार करने के लिए सहकारिता एवं जनसहभागिता आंदोलन की बहुत आवश्यकता है, जो दूध वितरण, दुग्ध उत्पाद बनाने, पशुपोषाहार, टीकाकरण, पशु चिकित्सा, बीज की उपलब्धता तथा किसानों के लिए ऋण की उचित व्यवस्था आदि कर सकें। साथ ही साथ इस व्यवस्था में लगे हुए लोगों में आधुनिक तकनीकी ज्ञान का प्रसार भी आवश्यक है।

भविष्य के नीतिगत मुद्दे एवं अनुसंधान आवश्यकताएं

राष्ट्रीय कृषि–नीति के अनुसार कृषि उत्पादन में 4 प्रतिशत की वार्षिक विकास दर का लक्ष्य रखा गया है, चूंकि वर्तमान फसल उत्पादन में विकास दर 2 प्रतिशत है इसलिए पशुपालन मे 6–8 प्रतिशत की विकास दर के द्वारा कुल कृषि उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन विकास दर के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित एवं मिश्रित कृषि प्रणाली के अनुसार संसाधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखकर कृषि तकनीक विकसित करनी होगी, जिसमें फसल, पशु व वृक्ष सभी को समायोजित किया जा सके। प्रायः ऐसा देखा गया है कि कृषि संबधी तकनीक विकसित करने मे किसानों का परामर्श नहीं लिया जाता है। यह बात उस समय तक तो उचित थी जब तक किसानों को नई प्रजातियों के बीज एवं उन्नत किस्म के पशु उपलब्ध कराने थे। परन्तु अब यह आवश्यक हो गया है कि कृषि तकनीक विकसित करने से पहले किसानों की क्षमता, उनका सम्पूर्ण परिवेश तथा भूमि एवं वातावरण का आंकलन किया जाए, जिससे कि विकसित की गई नई तकनीक किसानों द्वारा अपनायी जा सके। अतः अनुसंधानकर्ताओं को चाहिए कि अनुसंधान कार्य आरम्भ करने से पूर्व किसानों की समस्याओं एवं सम्भावित समाधनों एवं उनके पास उपलब्ध संसाधनों आदि का सर्वेक्षण करें। सर्वेक्षण के दौरान उभरे हुए महत्वपूर्ण विषयों की सूची बनाकर किसानों से बातचीत करके, जन सहभागिता पर आधारित अनुसंधान परियोजना तैयार करें।

अजोला – मरू क्षेत्र में नई आशा

सुभाष कच्छवाहा, सुशील कुमार शर्मा, अरुण कुमार मिश्रा एवं बसन्त कुमार माथुर
कृषि विज्ञान केन्द्र, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

पशुधन के विकास हेतु उत्तम प्रजनन के साथ–साथ पशुपोषण का विशेष महत्व है। पशुधन की उत्पादन क्षमता पर हरे चारे की उपलब्धता का बहुत असर पड़ता है। अतः पशुओं की दूध उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए पशुओं को समुचित मात्रा में हरा चारा खिलाना अत्यन्त आवश्यक है। पशुपालन व्यवसाय में 65 से 70 प्रतिशत पशुओं को दिये जाने वाले आहार पर व्यय होता है।

अधिकांशतः पशुपालक पशुओं को सूखा भूसा, कडबी आदि खिलाते हैं, जिसमें पोषक तत्व बहुत कम होते हैं। पशुओं को पौष्टिक आहार खिलाने का तात्पर्य है कि पशु के भोजन में वह सभी तत्व एक निश्चित अनुपात व मात्रा में होने चाहिए, जो पशु के शरीर की रक्षा और उनसे होने वाले उत्पादन के लिए आवश्यक है। इनमें मुख्य रूप से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा व खनिज लवण होने चाहिए। हरे चारे से लगभग ये सभी तत्व पशुओं को मिल जाते हैं तथा थोड़ी बहुत कमी संतुलित आहार के माध्यम से पूरी हो जाती है।

शुष्क क्षेत्रों में वर्ष के कुछ महीनों में हरा चारा उलब्ध होता है और बाकी समय पशु सूखे चारे आदि पर निर्भर होते हैं। अजोला हरे चारे का एक अच्छा विकल्प है। हरा चारा वर्ष पर्यन्त मरु क्षेत्र में पशुओं को उपलब्ध हो सके इसके लिए पशुपालकों को चाहिए कि वे अपने खेत/घर में अजोला लगायें। जिन क्षेत्रों में जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं है वहां पर पशुओं को वर्ष भर पौष्टिक हरा चारा अजोला द्वारा दिया जा सकता है।

अजोला एक फर्न है जो कि शैवाल की तरह दिखाई देती है। इसको पानी में उगाया जाता है तथा पशुओं को चारे या बाँटे के साथ मिलाकर खिलाया जाता है। इसका उपयोग हरी खाद के रूप में भी किया जाता है। अजोला का घर पर उत्पादन करने पर 50 पैसे प्रति किलोग्राम खर्चा आता है।

उपयोगिता

1. इसको सभी पशुओं जैसे गाय, भैंस, मुर्गी, भेड़, बकरी, खरगोश और मछली इत्यादि को खिलाया जा सकता है।
2. यह सुपाच्य है तथा इसे अन्य आहार के साथ मिलाकर भी खिलाया जाता है।
3. इसको खिलाने से पशुओं के दूध उत्पादन में 10–15 प्रतिशत तक वृद्धि पायी गयी है।

4. इसमें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, अमीनो अम्ल, विटामिन (ए,बी12 और बीटा केरोटीन), वृद्धि उत्प्रेरक एवं पोषक तत्व जैसे – कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटेशियम, आयरन, कॉपर और मैग्निशियम होते हैं, जिससे पशु समय पर पाले (ताव) में आ जाता है। इसे खिलाने से रतौंधी रोग नहीं होता है।

5. इसे जैविक खाद के रूप में भी उपयोग में लाया जाता है जिससे भूमि में नाईट्रोजन की मात्रा बनी रहती है।

6. अजोला खिलाने से पशुओं में पोषण की लागत 25 से 30 प्रतिशत तक कम की जा सकती है तथा दूध की गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है।

तालिका 1: अजोला (अजोला पिन्नाट) का रासायनिक विश्लेषण।

घटक	सूखा तत्व (Dry Matter)	घटक	सूखा तत्व (Dry Matter)
जैविक पदार्थ	75-78 %	गैर प्रोटीन नाइट्रोजन	0.99%
क्रूड प्रोटीन	20-25%	आयरन	0.25%
ईथर उद्धरण (Ether extract)	2.93%	मैंगनीज	0.27%
क्रूड फाइबर	12-15%	मैगनीशियम	0.17%
राख	28.7%	सोडियम	0.49%
नाइट्रोजन मुक्त उद्धरण (NFE)	31.1%	पोटेशियम	4.93%
कैल्शियम	2.07%	कॉपर	17.6 पी पी एम
फास्फोरस	0.77%	जिंक	71.8 पी पी एम

सारणी 2: तुलनात्मक चारे के रूप में अजोला की पौष्टिकता।

पशु आहार	क्रूड प्रोटीन (%)	फाइबर (%)	पाच्य पोषक तत्व (%)
चारा	5.13	18 से अधिक	60 से कम
बाटा	15.20	18 से कम	70
चारा फलियां	16.20	30	60 से कम
अजोला	20.25	12.15	60.65

सारणी 3: हरा चारा, फसलों तथा अजोला में सूखा तत्व और क्रूड प्रोटीन।

क्र.सं.	चारा	सूखा तत्व (%)	क्रूड प्रोटीन (%)
1	संकर नैपियर, ज्वार, बाजरा, मक्का	10-15	10-12
2	लोबिया	10-15	15-20
3	सूबबूल	10-15	20-25
4	रिजका	5-10	22-25
5	सेवण घास	10-15	22-25
6	बरसीम	5-10	20-25
7	धामण घास	10-15	8-12
8	अजोला	7-11	20-25

लागत

अजोला की नियमित उपज बनाये रखने के लिए एक इकाई की लागत निकाली गई है। इकाईयों की वास्तविक संख्या पशु की संख्या के आधार पर बढ़ाई जा सकती है। लागत का विवरण नीचे दिया गया है।

सारणी 4: एक अजोला की क्यारी तैयार करने में कुल लागत।

क्र.सं.	मद	संख्या	दर (रू)	लागत (रू)
1.	गड्ढा बनाने की लागत (12′ x 3′ x 1)	1	100	100/-
2.	निर्माण सामग्री (पोली नेट)	एक मुश्त	–	1000/-
3.	गोबर	5 किलो/गड्ढा	3/किलो	15/-
4.	उर्वरक			0/-
	एस एस पी – 1 किलो / गड्ढा	1 किलो	50	50/-
	खनिज मिश्रण – 1 किलो/गड्ढा	1 किलो	50	50/-
5.	अजोला कल्चर	एक मुश्त	–	100/-
6.	विविध	–	–	100/-
			कुल लागत	**1415/-**

सारणी 5: अजोला उत्पादन के लिए आदर्श दशाए

1.	पी.एच.	4.5–7.5
2.	तापक्रम	20–35°C
3.	आद्रता	65–85%
4.	प्रकाश	50%
5.	पानी की गहराई	8–10 से.मी.

कैसे खिलायें

अजोला बड़े पशुओं (गाय, भैंस) को 2–3 किलोग्राम और छोटे पशुओं (भेड़, बकरी) को 1–2 किलोग्राम प्रति पशु बाँटे में डालकर खिला सकते हैं। इसके अलावा सूखे चारे के साथ मिलाकर भी खिला सकते हैं।

अजोला का उत्पादन पशुपालक घर पर इस प्रकार कर सकते है :-

1. सर्वप्रथम किसी भी आकार का एक फिट गहरा गड्ढा खोदकर, इसमें पॉलीथीन बिछाकर तैयार करें।
2. पॉलीथीन के ऊपर थोड़ी मात्रा में (करीब 2–4 इंच) उपजाऊ मिट्टी बिछा दें।
3. मिट्टी के ऊपर गोबर (4–5 किलोग्राम) करीब 1 महीने पुराना 15 से 20 लीटर पानी में घोलकर एवं सुपर फॉस्फेट (30–40 ग्राम) को मिश्रित कर मिट्टी के ऊपर बिछा दें। इसमें करीब 10–15 से.मी. तक पानी भर दें।
4. अजोला उत्पादन के लिए पानी की पी.एच. 4.5 से 7.5 के बीच रहनी चाहिए।
5. यदि वातावरण का तापक्रम 30°C से ज्यादा है तो सीधी सूर्य की किरणों से बचाना चाहिए।
6. यदि पानी की समस्या हो तो स्नानगृह तथा पशुओं के बाड़े का भी पानी काम में ले सकते हैं।
7. करीब आधा से एक किलोग्राम शुद्ध अजोला कल्चर बीज को पानी भरे गड्ढे में बिखेर दें।
8. एक सप्ताह बाद अजोला उगकर एक परत की तरह दिखाई देने लगता है।
9. प्रत्येक सप्ताह 20 ग्राम फॉस्फेट एवं एक किलोग्राम गोबर डाल देना चाहिए। इससे अजोला में पर्याप्त पोषक तत्व उपलब्ध हो जाते हैं।
10. दो महिने में गड्ढे की 50 प्रतिशत मिट्टी और पानी को बदल देना चाहिए तथा पुनः इसी अनुपात में वापस डाल देना चाहिए।
11. प्रत्येक 3 महीने बाद मिट्टी को अंदर से पूरा बदल देना चाहिए।
12. अजोला बहुत जल्दी बढ़ता है इसलिए 1–2 किलोग्राम प्रतिदिन (500–600 ग्राम प्रति वर्ग मीटर प्रतिदिन) उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।
13. यदि अजोला हानिकारक कवक से प्रभावित हो जाय तो इसको पूरा नष्ट कर देना चाहिए और गड्ढे को साफ कर के पुनः कलचर डालना चाहिए।

सूचना–प्रौद्योगिकी की कृषि के क्षेत्र में उपयोगिता एवं अनुप्रयोग

कुसुम लता, पूनम कालश, मनीष चौधरी एवं एस.के.शर्मा
कृषि विज्ञान केन्द्र, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

सूचना प्रौद्योगिकी का तात्पर्य सूचनाओं के एकत्रिकरण, भंडारण, प्रोसेसिंग, प्रसार एवं प्रयोग से है। सूचना प्रौद्योगिकी एक ऐसा तंत्र है जिसमें सूचनाओं का संचार अथवा आदान–प्रदान त्वरित गति से दूरस्थ समुदायों में, विभिन्न तरह के साधनों तथा संसाधनों के माध्यम से सफलता पूर्वक किया जा सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी के अंतर्गत वे सभी उपकरण एवं पद्धतियाँ सम्मिलित हैं, जो सूचना के संचालन में काम आते हैं। कृषि हमारे विकास का मुख्य आधार है अतः सूचना और संचार क्रांति का लाभ इस क्षेत्र में भी मिलना चाहिए। कृषि क्षेत्र में आशातीत सफलता न मिलने के बहुत से कारणों में प्रदत कृषि प्रौद्योगिकी का लोगों में विलम्ब से पहुंचना एक प्रमुख कारण है। किसानों को फसल लगाने से पहले अच्छे एवं उन्नत बीज, खाद एवं जीवनाशियों की उपलब्धता की जानकारी समय पर मिलनी चाहिए। हमारे देश में अधिकतर खेती मौसम पर ही आधारित है और मौसम की समय पर सूचना का भी खेती में बहुत अधिक महत्व है। कृषि विपणन में भी संचार व सूचना प्रौद्योगिकी का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि सूचना के माध्यम से किसान अपने कृषि उत्पाद का सही विपणन कर सकता है।

सूचना और संचार माध्यमों का खेती में बहुमूल्य योगदान रहा है। देश में 1960 के दशक में हुई हरित क्रांति के तकनीकी ज्ञान के विस्तार में उस समय की सबसे सशक्त संचार प्रणाली आकाशवाणी का महत्वपूर्ण योगदान रहा था। आकाशवाणी आज भी एक सशक्त संचार माध्यम है, जिसके कार्यक्रम देश के लगभग 92 प्रतिशत भू–भाग और 99 प्रतिशत जनसंख्या तक पहुंचते हैं। केंद्र सरकार ने रेडियो की उपयोगिता को समझते हुए सामुदायिक रेडियो की योजना भी शुरू की है जिसे सार्वजनिक और निजी संस्थाएं स्थापित कर सकती हैं। कम लागत के सामुदायिक रेडियो के माध्यम से कृषि तकनीकी का विस्तार तेजी से होगा। आकाशवाणी और दूरदर्शन पर नियमित रूप से कृषि जानकारी से सम्बंधित कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं।

सूचना–प्रौद्योगिकी की कृषि के क्षेत्र में उपयोगिता

सूचना युग के इस दौर में जीवन के हर क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न साधनों जैसें रेडियो, दूरदर्शन, केबल नेटवर्क, इन्टरनेट, टेलीफोन, मोबाइल

फोन व कम्प्यूटर पर चलने वाले विभिन्न 'साफ्टवेयरों' के माध्यम से हम आसानी व तेजी से कृषि सम्बन्धी आधुनिक तकनीकियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर कृषि के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। रेडियो व दूरदर्शन द्वारा आजकल किसानों के लिए ऐसे सीधे प्रसारण वाले कार्यक्रम प्रसारित किये जा रहे हैं जहां किसान हर सप्ताह रेडियो व दूरदर्शन केन्द्रों में बैठे हुए कृषि विशेषज्ञों से सीधे बात कर सकते हैं और अपनी कृषि सम्बन्धी समस्याओं का समाधान पा सकते हैं। टेलीफोन से हम किसान कॉल सेंटर पर 1551 नम्बर पर तथा मोबाइल से हम सेंटर के 18001801551 नम्बर पर फोन करके कृषि सम्बन्धी जानकारी मुफ्त प्राप्त कर सकते हैं। आज कम्प्यूटर द्वारा नियंत्रित मशीनों द्वारा बड़े–बड़े खेतों की जुताई व उन्हें समतल करना, बुवाई करना, निराई–गुड़ाई करना, खाद देना, सिंचाई करना, कीटनाशी व रोगनाशी रसायनों के छिड़काव जैसे कार्य सफलतापूर्वक किये जा रहे हैं। इसके साथ कम्प्यूटर कृषि उत्पादों को डिब्बाबंद करने, बेचने के लिए उपयुक्त मंडियों का चयन करने और

मूल्यों का निर्धारण करने में भी सहायता करते हैं। कम्प्यूटर नियंत्रित मशीनों का सब्जियों, फूलों व फलों की पॉलीहाउस के अन्दर होने वाली संरक्षित खेती में भी महत्वपूर्ण योगदान है, जहां फसलों को पानी, खाद और नमी इत्यादि की सही मात्रा और समय कम्प्यूटर ही निर्धारित करता है। हमारे देश में कृषि, बागवानी एवं पशुपालन के केंद्र और राज्य सरकार के विभागों के अलावा कृषि में शोध, संचार और विस्तार के लिए एक सशक्त संस्थागत प्रणाली है। वर्तमान में देश में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के 97 संस्थान हैं, 63 राज्य कृषि विश्वविद्यालय, 5 डीम्ड विश्वविद्यालय, 651 कृषि विज्ञान केंद्रों के साथ–साथ कृषि के केंद्रीय विश्वविद्यालय भी है। इनमें से अधिकतर विश्वविद्यालयों और संस्थानों ने अपने वेबसाइट और कॉलसेंटर भी खोल रखे हैं। जहां किसान कभी भी विशेषज्ञों से टेलिफोन या ई–मेल द्वारा जानकारी ले सकते हैं। कई कृषि विश्वविद्यालयों ने किसानों के लिए एक सामुदायिक रेडियो केन्द्र भी खोला हुआ है। कई विश्वविद्यालय व अन्य संस्थान मोबाइल फोन पर 'एस.एम.एस.' द्वारा भी किसानों को जानकारी उपलब्ध करवा रहे हैं। किसान अपने कम्प्यूटर द्वारा या गांव में सामुदायिक सूचना केन्द्रों के माध्यम से भी

कृषि सम्बन्धी जानकारी कृषि विश्वविद्यालयों के वेबसाइट पर इन्टरनेट के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे देश के राज्य गुजरात में पंचायतों को इस प्रदेश के कृषि विश्वविद्यालयों से जोड़ा गया है ताकि कम्प्यूटर और इन्टरनेट के माध्यम से कृषि प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण तेजी से हो। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द्र द्वारा भी कृषि विश्वविद्यालयों में ऐसी प्रणाली स्थापित की गई जहां किसान प्रदेशों के विभिन्न भागों में फैले हुये कृषि विज्ञान केन्द्रों से विश्वविद्याल के मुख्य केन्द्र पर मौजूद विशेषज्ञों से कैमरे पर सीधे बातचीत कर सकते हैं। इसके अलावा रेडियो व दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्रों पर विभिन्न विषयों पर पाठशालाओं का आयोजन भी किया जाता है जहां उस विषय पर सभी जानकारियां क्रमबद्ध तरीके से किसानों को घर बैठे ही दी जाती हैं। कम्प्यूटर से जुड़े हुए किसान, सीडी व 'पैन ड्राइव' के माध्यम से भी जानकारी प्राप्त करके अपने कम्प्यूटर पर देख सकते हैं।

कृषि से संबंधित एग्री पोर्टल्स एवं एप्स

एग्री पोर्टल्स

www.soilhealth.dac.gov.in: किसान मिट्टी की उर्वरक शक्ति को जांचने और बढ़ाने के लिए इस वेबसाइट से अधिक जानकारी ले सकते हैं। इस पोर्टल पर मिट्टी से जुड़ी जानकारी डालने पर किसानों को उसकी रिपोर्ट संदेश (एसएमएस) और ई–मेल के द्वारा उपलब्ध करवाई जायेगी।

www.fqcs.dac.gov.in: किसानों की फसल के लिए उर्वरक की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने यह वेबसाइट शुरू की है। इस पोर्टल पर उर्वरक के सैंपल की जांच और उसकी रिपोर्ट उपलब्ध करवाई जायेगी। इस नई सुविधा से अधिकतर जांच जो मैनुअल हुआ करती थी, वे अब ऑटोमैटिक हो जाएंगी। इसके लिए एक मोबाइल एप्लीकेशन की भी शुरुआत की गयी है, जो उर्वरक की जांच करेगा।

www.pgsindia-ncof.gov.in: घरेलू जैविक बाजार को विकसित करने के लिए इस पोर्टल की शुरुआत की गई है। इस पोर्टल की सहायता से मध्यम और छोटे वर्ग के किसानों को जैविक प्रमाणीकरण (सर्टिफिकेशन) की सुविधा आसानी से मुहैया करवाई जायेगी। इस पोर्टल के माध्यम से किसानों को जैविक कृषि उत्पादों का पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन), प्रमाणीकरण (सर्टिफिकेशन) और दस्तावेजीकरण/प्रलेखन (डॉक्यूमेंटेशन) की सुविधा दी जायेगी।

http://mkisan.gov.in/hindi/: सरकार ने इस वेबसाईट के माध्यम से किसानों के हितों से जुड़ी तमाम जानकारियों को बिना इंटरनेट के भी उनके मोबाइल पर उपलब्ध कराने की दिशा में काम किया है। इस पोर्टल का लक्ष्य एसएमएस पोर्टल की अवधारणा पर केन्द्रित है जो मोबाइल की शक्ति का इस्तेमाल करते हुए किसानों के बीच उचित समय पर, विशिष्ट एवं समग्र जानकारी पहुँचाने की दिशा में काम कर रहा है। चूँकि गांवों में किसानों के पास अभी इंटरनेट की न तो उपलब्धता है और न ही व्यापक स्तर पर समझ ही बन पायी है, लिहाजा किसानों के हितों से जुड़े इस वेब पोर्टल को मोबाइल संदेश एवं मोबाइल कॉल आधारित बनाया गया है।

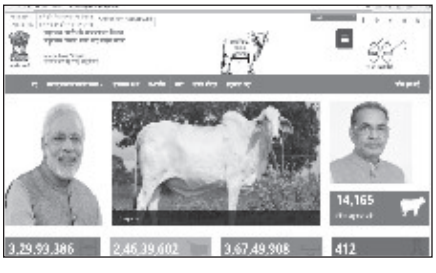

www.epashuhaat.gov.in ("ई–पशु हाट"): यह वेबसाइट हर पशुधन का फोटो सहित पूरा विवरण उपलब्ध कराएगी। इसमें पशु आहार और चारे की उपलब्धता की भी जानकारी होगी। इसके जरिये पशुधन की खरीद के बाद इसकी ढुलायी की सुविधा भी उपलब्ध कराई जायेगी। इस ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से किसान घर बैठे सही कीमत पर अच्छी नस्ल के मनचाहे मवेशी खरीद सकेंगे। साथ ही यह इलेक्ट्रोनिक मार्केट किसानों को न केवल गाय, भैंसें खरीदने में मददगार बनेगा, बल्कि यहां से जमे हुए सीमेन (फ्रोजन सीमेन) और भ्रूण भी खरीदे जा सकेंगे।

राष्ट्रीय कृषि बाजार पोर्टल (ईएनएएम)/राष्ट्रीय कृषि बाजार 'ई–नाम'/ई–ट्रेडिंग प्लेटफार्म 'ई–नाम'/ ई–कृषि बाजार : यह कृषि कारोबार की एक पारदर्शी प्रणाली है जो किसानों, व्यापारियों और उपभोक्ताओं को लाभ पहुंचाएगी। भारत में पहली बार "एक राष्ट्र–एक बाजार" विकसित हो रहा है और यह कृषि बाजार अंतरराष्ट्रीय स्तर का होगा। ई–कृषि बाजार किसानों को अपने उत्पाद को बेचने का फैसला लेने में सक्षम बनाते हुए उनकी' आर्थिक स्थिति को सुधारेगा। किसानों को अपनी उपज बेचने के लिए आढ़तियों और बिचौलियों की मनमानी का सामना नहीं करना पड़ेगा और ना ही उन पर निर्भर रहना होगा। किसान अपनी उपज को कब, कहाँ और किस कीमत पर ऑनलाइन थोक बिक्री मंडी में बेचने का चुनाव आसानी से कर पायेंगे तथा साथ ही बिक्री का सर्वोतम चुनाव करके बेहतर आय प्राप्त कर सकेंगे।

http://farmer.gov.in (किसान पोर्टल): किसानों के लिए वन स्टॉप शॉप: किसान पोर्टल, कृषि, पशुपालन और मत्स्य पालन के क्षेत्रों में भारतीय किसान के उत्पादन, बिक्री एवं भंडारण से संबंधित सभी प्रकार की

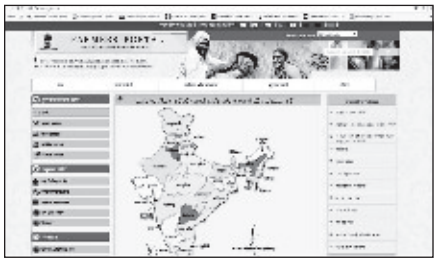

जानकारियों की जरूरत को एक ही स्थान पर पूरा करने के लिए एक प्रयास है। इस से भारतीय किसान को विशिष्ट प्रयोजनों के लिए बनाई गई वेबसाइटों की भूलभुलैया के माध्यम से जानकारी हासिल करने की आवश्यकता नहीं होगी। किसान पोर्टल में आने पर किसान अपने गांव/ब्लॉक/जिला या राज्य के आसपास संबंधित विषयों पर सभी प्रकार की जानकारी प्राप्त करने में सक्षम हो जाएगा। यह जानकारी लिखित, मौखिक या ऑडियो/वीडियो संदेशों के द्वारा किसानों तक उन की भाषा में उन तक पहुंचाई जायेगी। इन स्तरों तक पोर्टल के मुख पृष्ठ पर दिए गये नक्शे की सहायता से आसानी से पहुंचा जा सकता है। विशेष रूप से विकसित "सुझाव खंड" के माध्यम से किसान विशिष्ट विषयों पर प्रश्न व बहुमूल्य सुझाव भी पहुंचा सकते हैं।

मोबाइल आधारित प्रमुख सेवाएँ एवं एप्स

मोबाइल आधारित प्रमुख सेवाएँ

1. किसान कॉल सेंटर (केसीसी)

इस सेवा की शुरुआत भारत सरकार के कृषि एवं सहकारिता विभाग ने वर्ष 2004 में की थी। इस सेवा के माध्यम से देश के किसी भी कोने में किसान अपने मोबाइल अथवा लैंडलाइन फोन से निःशुल्क टेलीफोन नंबर–1800–180–1551 या 1551 पर सुबह 6 बजे से रात्रि 10 बजे तक कॉल कर वांछित जानकारी एवं परामर्श अपनी क्षेत्रीय भाषा में ले सकते हैं। यह जानकारी मौखिक रूप से देने के साथ–साथ बातचीत समाप्त होने के बाद मोबाइल पर लिखित सन्देश (एस.एम.एस.) के रूप में भी उपलब्ध होती है। किसान दी गयी जानकारी से संतुष्ट न होने अथवा अधिक जानकारी चाहने पर कॉल को स्तर–द्वितीय एवं स्तर–तृतीय के विशेषज्ञों को आवश्यक कार्यवाही हेतु अग्रेषित कर दिया जाता है।

2. सन्देश सेवा:

(अ) लिखित सन्देश सेवा:

भारत सरकार के कृषि मंत्रालय द्वारा किसानों को इस सेवा के माध्यम से समय–समय पर हिंदी के साथ–साथ क्षेत्रीय भाषाओं में लिखित सन्देश के रूप में आवश्यक जानकारियां

प्रदान की जा रही हैं। इस सेवा का लाभ उठाने के लिये निम्न लिखित प्रक्रिया अपनाकर किसान अपना मोबाइल नंबर पंजीकृत करवा सकता है।

फोन करके पंजीकरण: किसान कॉल सेंटर टोल फ्री नंबर 18001801551 पर कॉल करके आवश्यक निर्देशों का पालन करें।

वेब पंजीकरण: वे किसान जिनके पास इंटरनेट की सुविधा हैं पोर्टल के माध्यम से रजिस्टर कर सकते हैं अथवा वह पास के सामान्य सेवा केंद्र (सीएससी) में जाकर, ग्राम स्तरीय उद्यमी के द्वारा रजिस्टर हों सकते हैं। पंजीकरण करवाने के लिए एक बार में तीन रुपए का शुल्क ग्राम स्तरीय उद्यमी द्वारा लिया जाएगा। वेब पंजीकरण के लिए http://mkisan.gov.in/hindi/wbreg.aspx लिंक है।

निम्नलिखित व्यक्तिगत विवरण रजिस्टर करने के लिए अनिवार्य हैं:

1. नाम
2. मोबाइल नंबर
3. राज्य
4. जिला
5. ब्लॉक

किसान जानकारी प्राप्त करने के लिये भाषा एवं फसल व गतिविधियों के बारे में अपनी पसंद का चुनाव कर सकता है। रजिस्टर बटन दबाने के बाद, एक सत्यापन कोड (वेरिफिकेशन कोड) किसान के मोबाइल पर भेजा जाएगा जो पंजीकरण प्रक्रिया को पूरा करने के लिए जरूरी है।

सन्देश (एसएमएस) के माध्यम से पंजीकरण: किसान 51969 या 7738299899 पर एक एसएमएस भेजकर पंजीकृत कर सकते हैं। पंजीकरण के लिए प्रक्रिया और स्वरूप इस प्रकार हैं। –

1. संदेश बॉक्स में टाइप के लिए प्रारूप है –"किसान GOV REG <नाम>, <राज्य का नाम>, <जिला का नाम>, <ब्लॉक का नाम>श (राज्य, जिला और ब्लॉक के नाम के केवल पहले 3 वर्णों की आवश्यकता होती है)
2. संदेश लिखने के बाद 51969 या 7738299899 पर भेज दें।

(ब) वॉइस सन्देश सेवा

यह सेवा चुनिंदा कृषि विज्ञान केन्द्रों तथा संस्थाओं द्वारा शुरू की गयी है। इस सेवा के माध्यम से किसान के मोबाइल पर लिखित सन्देश के स्थान पर फोन आता है, जिसमें रिकार्डेड सन्देश सुनाया जाता है। इस सेवा हेतु विशेषज्ञ अपना सन्देश रिकॉर्ड कर वेबसाइट के माध्यम से पंजीकृत किसानों तक अपना सन्देश पहुंचा सकते हैं। कृषि मंत्रालय भारत सरकार के साथ–साथ कृषि विज्ञान केंद्र, गैर सरकारी, सहकारी एवं कॉर्पोरेट संस्थाएं भी यह सुविधा उपलब्ध करवाते हैं।

नाउकास्ट– मुफ्त एसएमएस सेवा

इस सेवा में एसएमएस के माध्यम से तूफान, ओलावृष्टि जैसी मौसम परिस्थितियों के बारे में अग्रिम सूचना दी जायेगी। किसानों को खराब मौसम की स्थिति के बारे में प्रत्येक तीन घंटे में एसएमएस के जरिये उनके मोबाइल पर अलर्ट मिलेगा। इससे किसान ऐहतियाती उपाय कर सकते हैं। मुफ्त एसएमएस अलर्ट अंग्रेजी, हिंदी व क्षेत्रीय भाषाओं में किसानों के आग्रह के आधार पर भेजा जाएगा। यह अलर्ट उन एक करोड़ से अधिक किसानों को मिलेगा जो पहले ही सरकार के एमकिसान पोर्टल पर अपना पंजीकरण करा चुके हैं। एसएमएस सेवा के लिए डेटा भारतीय मौसम विभाग के 146 मौसम स्टेशनों से लिया जाता है।

कृषि उपयोगी मोबाइल एप्स

पूसा कृषि: पूसा कृषि मोबाइल की यह सेवा भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) की ओर से विकसित की गई फसल की नई किस्मों के बारे में, संसाधन संरक्षण खेती के कार्य व्यवहार के साथ साथ खेती की मशीनरियों और उसके अमल से संबंधित सूचनायें किसानों को उपलब्ध करायेगी। 'तकनीक को खेतों तक पहुंचाया जा सके', यही इस ऐप का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इसके इस्तेमाल से किसानों को अपनी समस्याओं के समाधान की जानकारी आसानी से प्राप्त हो सकेगी। साथ ही मौसम के बारे में जानकारियां मिलेंगी और किसान अपनी फसल को बचाने के लिए उसके अनुरूप उपाय कर सकेंगे।

आरएमएल फार्मर – कृषि मित्र: आरएमएल फार्मर एक एप्प है जोकि किसानों को कमोडिटी और मंडी के भाव, खेत और किसान से संबंधित समाचार, मौसम की जानकारी और कृषि सलाहकार के साथ अपडेट रख सकती है। यह किसान सुविधा एप्लीकेशन कृषि व सह कृषि व्यवसायों से जुड़े लोगों को उनके स्थान के अनुसार और उनके पसंदीदा भाषा में व्यक्तिगत और निष्पक्ष रूप से कृषि की गहन जानकारी के साथ उपयोगकर्ता को निर्णय लेने में सशक्त बनती है। आरएमएल फार्मर एप्प उपयोगकर्ता 17 राज्यों के 50,000 गांवों में से 450 से अधिक फसल किस्मों, 1300 मंडियों व 3500 मौसम स्थानों चुन सकते हैं।

इफको किसान: यह एप किसानों को नवीनतम मंडी कीमतों, मौसम पूर्वानुमान, कृषि सलाह, कृषि से संबंधित सर्वोत्तम सुझाव, पशुपालन, बागवानी, खरीदार और विक्रेता मंच, तथा कृषि संबंधित सभी समाचार एवं सरकारी योजनाओं की जानकारी प्रदान करता है। यह भारतीय किसान कृषि सुविधा अनुप्रयोग (एप्लिकेशन), 11 भारतीय भाषाओं में कृषि चेतना (अलर्ट) और कृषि परामर्श को लिखित सन्देश के रूप में तथा जो किसान अपनी ही भाषा में सबसे ज्यादा सहजता का अनुभव करते हैं, उन किसानों की सुविधा के लिए कृषि ऑडियो क्लिप में भी प्रदान करता है।

काजरी कृषि: यह एक मोबाइल एंड्रॉयड एप्लिकेशन है। इस एप्प के माध्यम से किसानों को कृषि से जुडी हर महत्वपूर्ण जानकारी अब घर बैठे ही पलभर में मिल जायेगी। इस एप्प में अंगूर, अनार, आंवला, अमरूद आदि बागवानी फसलों बाजरा, ग्वार, मूंग, मोठ आदि फसलों की देख भाल, मौसम सम्बन्धी जानकारी, कृषि सम्बन्धी महत्वपूर्ण राय, सोलर के प्रयोग, आधुनिक कृषि यंत्र, पशु पालन आदि के बारे में जानकारी उपलब्ध रहेगी।

क्रॉप इंश्योरेंस: "क्रॉप इंश्योरेंस" मोबाइल ऐप से किसानों को न केवल उनके क्षेत्र में उपलब्ध बीमा कवर के बारे में पूरी जानकारी मिलेगी, बल्कि ऋण लेने वाले किसानों को फसल के लिए इंश्योरेंस प्रीमियम,कवरेज राशि तथा ऋण राशि की गणना में भी मदद मिलेगी। इसका इस्तेमाल सामान्य बीमा राशि, विस्तारित बीमा राशि, प्रीमियम ब्यौरा तथा अधिसूचित क्षेत्र में किसी अधिसूचित फसल की सब्सिडी सूचना के बारे में जानकारी प्राप्त करने में किया जा सकेगा।

एग्रीमार्केट मोबाइल: "एग्रीमार्केट मोबाइल" ऐप से किसान बाजार भावों के बारे में सूचना एकत्र कर अपना निर्णय ले सकते हैं और यह समझ सकते हैं कि बिक्री के लिए उन्हें आस–पास की किस मंडी में अपने उत्पाद ले जाना चाहिए। यह ऐप किसानों को असली फसल मूल्यों से अवगत कराने के उद्देश्य से विकसित किया गया है। इस मोबाइल ऐप के इस्तेमाल से 50 किलोमीटर के दायरे की मंडियों में फसलों का बाजार मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। यह ऐप स्वतः मोबाइल जीपीएस इस्तेमाल करने वाले व्यक्ति के स्थान की पहचान करता है और 50 किलोमीटर के दायरे में आने वाले बाजारों में फसलों की कीमतों को उपलब्ध कराता है। यदि कोई व्यक्ति जीपीएस लोकेशन का उपयोग करना नहीं चाहता तो उसके लिए भी किसी अन्य बाजार या फसल का मूल्य प्राप्त करने का विकल्प है। मूल्य एगमार्कनेट पोर्टल से लिए जाते हैं।

"क्रॉप इंश्योरेंस" तथा "एग्रीमार्केट मोबाइल" यह दोनों मोबाइल ऐप कृषि सहकारिता तथा किसान कल्याण विभाग के आईटी प्रभाग द्वारा विकसित किए गए हैं और इन्हें गूगल स्टोर या एम किसान पोर्टल http://mkisan.gov.in/Default.aspx से डाउनलोड किया जा सकता है।

डीडी किसान– किसानों पर केंद्रित टीवी चैनल

डीडी किसान, भारतीय कृषि सम्बंधित 24घंटे का एक टेलीविजन चैनल है, जो दूरदर्शन के स्वामित्व में है। इसे 26 मई 2015 को शुरू किया गया था। यह चैनल कृषि और संबंधित क्षेत्रों जैसेः नई कृषि तकनीक का प्रसार, पानी के संरक्षण व जैविक खेती जैसे विषयों की जानकारी देता है।

नवीनतम कृषि तकनीकियाँ एवं उपकरण

सेंसर तकनीक

सेंसर तकनीक की मदद से कई देशों के किसान फसल की रियल टाइम जानकारी जुटा रहे हैं। इससे पौधों को कब, कितने खाद–पानी की जरुरत है। किसान घर बैठे इसकी जानकारी प्राप्त कर लेते हैं।

रोबोटिक फार्मिंग

ड्राईवरलेस ट्रेक्टर तकनीक रोबोटिक फार्मिंग में अहम पड़ाव साबित हुआ है। इन्हें स्मार्टफोन या लेपटोप के जरिये दूर से ही नियंत्रित किया जा सकता है।

कम्प्यूटर नियंत्रित मशीनों द्वारा फसल उत्पाद की डिब्बाबंदी

फलों व सब्जियों की डिब्बाबंदी करते समय कम्प्यूटर की सहायता से फलों को कैसे और कितनी संख्या में रखने सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है। इस तरह फल व सब्जियाँ रगड़ लगने से बच जाते हैं जिससे ढुलायी व विपणन के समय कम नुकसान होता है।

निष्कर्ष:

स्पेन, हालैंड, इजाराइल, तुर्की, फ्रांस और अमेरिका जैसे देशों में कम्प्यूटर द्वारा नियंत्रित मशीनों से किये गये कार्य से संरक्षित खेती में फसलों से 3 से 4 गुणा अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा रहा है। इस तरह के स्वचालित यंत्रों की मदद से कोई भी किसान 350 एकड़ भूमि की आसानी से सिंचाई कर सकता है। इस तरह के कम्प्यूटर नियंत्रित कार्यों से सिंचाई में पानी, खाद व दूसरे जीवनाशी तथा अन्य रसायनों की कम खपत होती है और इनके सही समय पर निर्धारित उपयोग से अधिक उत्पादन भी मिलता है। भारत सरकार की ओर से ई–खेती को बढ़ावा देने की भरसक कोशिश की जा रही है।

सूचना और संचार क्रांति का कृषि में अधिक से अधिक उपयोग करके हम कृषि को नई दिशा दे सकते हैं जिससे देश में अन्न और दूसरे कृषि व पशुधन से प्राप्त उत्पादों का उत्पादन बढ़ेगा और किसानों की वित्तीय स्थिति और मजबूत होगी।

दूध एवं दूध उत्पादों का मूल्य संवर्द्धन

सविता सिंघल, पूनम कालश एवं एस.के.शर्मा
कृषि विज्ञान केन्द्र, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

भारत में डेयरी उत्पादों का मूल्य संवर्द्धन एक पुरानी परम्परा है। कुछ पारम्परिक दूध उत्पाद जैसे संदेश, बरफी, दही, श्रीखण्ड, कुल्फी आदि अत्यन्त लोकप्रिय है। आजकल घरेलु स्तर पर पनीर, छैना मुर्की, आइसक्रीम, रसगुल्ले कलाकन्द इत्यादि भी आसानी से बनाये जा सकते है। दूध उत्पाद पौष्टिकता से भरपूर होते है।

सब्जियाँ तथा बंगाली मिठाइयां बनाने के लिए पनीर का प्रयोग किया जाता है। भारतीय बाजारों में सब्जी आदि के लिए तो पनीर आसानी से मिल जाता है लेकिन ये पनीर बंगाली मिठाई जैसे रसगुल्ला, चमचम, रसमलायी आदि बनाने में काम नहीं आता। प्रस्तुत आलेख में कुछ दूध उत्पादों को बनाने की विधि की जानकारी दी जा रही है जो अत्यन्त सरल है इन उत्पादों को घरेलु स्तर पर बनाकर अपना एवं परिवार का स्वास्थ्य एवं सेहत अच्छी रख सकते हैं। साथ ही साथ लघु उद्योग के रूप में भी अपना कार्य शुरू किया जा सकता है।

पनीर

सामग्री: दूध–1 लीटर, नींबू का रस या सिरका–2 चाय के चम्मच या नींबू का सत–2 ग्राम

विधि:

1. पनीर बनाने के लिए हमेशा फुल क्रीम दूध का प्रयोग करें।
2. दूध को भारी तले के बर्तन में गरम करें, जब दूध में उबाल आ जाए तब इसमें नींबू निचोड़कर, सिरका डालकर या नींबू के सत को एक गिलास पानी में घोलकर दूध में डालें।
3. दूध में पानी अलग तथा पनीर अलग दिखने लगेगा, गैस बंद करे तथा इसमें थोड़ा सा ठण्डा पानी या बर्फ मिला दे ताकि पनीर एक दम पानी से अलग हो जाए।
4. अब छैने को किसी साफ, सूती मलमल के कपड़े से छानिए तथा कपड़े सहित किसी भारी वजनदार पत्थर से दबा कर 20–25 मिनट के लिए रख दे।
5. पनीर को कपड़े से निकाले और पनीर विभिन्न व्यंजन बनाने के लिए तैयार है।

छैना मुर्की

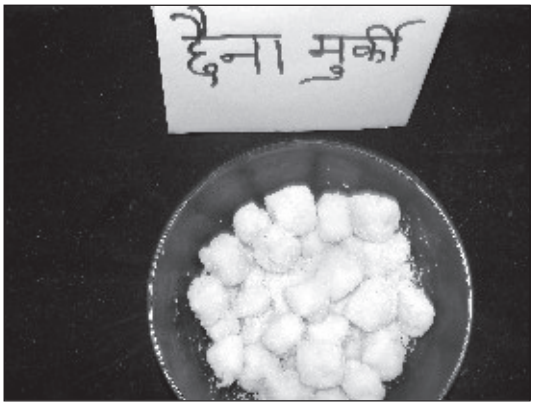

सामग्री : पनीर 150 ग्राम, चीनी 200 ग्राम, पानी 100 ग्राम

विधि :

1. सबसे पहले पनीर के छोटे–2 टुकड़े करें।
2. 100 ग्राम पानी में चीनी डालकर तीन तार की चाशनी बनायें।
3. पनीर के टुकड़ो को चाशनी में डालें।
4. जब सफेद झाग बनने लगे तथा चाशनी एकदम गाढ़ी हो जाए तब गैस बंद करें तथा लगातार हिलाते रहे।
5. कुछ देर बाद चीनी की चाशनी एकदम सूख जायेगी तथा पनीर पर चड़ जायेगी, छैना मुर्की तैयार है।
6. ये मिठाई करीब 15 दिनों तक खराब नहीं होती है।

रसगुल्ले

सामग्री : दूध 1 लीटर, चीनी–400 ग्राम, पानी 800 ग्राम।

विधि :

1. दूध को फाड़कर छैना बनायें।
2. एक प्लेट में छैने को डालकर हथेली से खूब मसलें तथा छोटी–छोटी गोलियां बनाएं।
3. चीनी, पानी को एक गहरे भगोने में मिलाकर गैस पर रखें तथा जब चाशनी उबलने लगे तब छैने के गोले एक–एक करके चाशनी में डालें।
4. भगौने को सख्त ढक्कन से ढके, भाप बाहर ना निकले। 15 मिनट तक पकायें।
5. 15 मिनट बाद गैस बंद करें तथा 2 कटोरे पानी डालें। ठण्डा करें तथा परोसें।

रसमलाई

रसमलाई बनाने के लिए रस तथा मलाई को अलग–अलग बनाया जाता है।

रस

सामग्री: दूध–2 लीटर, चीनी–3 कटोरी, पानी–8 कटोरी

विधि:

1. दूध को फाड़कर कपड़े में बांधकर कपड़ा लटका दे ताकि उसका पानी निकल जाए (छैना तैयार है)
2. छैना तैयार होने के बाद उसमें 1 चम्मच मैदा डालकर मसलें तथा पेड़े बना लें ।
3. चीनी तथा पानी मिलाकर चाशनी बनायें जब चाशनी अच्छी तरह उबलने लगें तब छैने के पेड़े चाशनी में डालें।
4. 15 मिनट बाद उसको पलटना है। लगभग आधा घंटे पकाने के बाद रस को मलाई में डालें।

मलाई

सामग्री: दूध–3 किलो, चीनी–1 कटोरी।

विधि:

1. दूध को आधा रहने तक पकायें।
2. इसमें छोटी ईलायची, कतरी बदाम, पिस्ता आदि स्वादानुसार डालें।

आइसक्रीम

सामग्री: दूध– 2 कप, क्रीम– 1 कप, चीनी– 3ध्4 कप, कॉर्न फ्लोर–2 चाय के चम्मच, मिल्क पाऊडर– 1 कप, वनीला एसेंस–8–10 बूंद।

विधि:

1. दूध को गुनगुना करके इसमें कॉर्न फ्लोर तथा मिल्क पाउडर डालकर गैस पर एक उबाल आने तक गर्म करें। ध्यान रखे गांठे ना बंधें।
2. अब इसमें क्रीम डालें तथा ठण्डा होने के लिए रखें।
3. ठण्डा होने पर चीनी तथा वनीला एसेंस भी डालें।
4. अब सभी सामग्री को मिक्सी के जार में कुछ सैकण्ड्स के लिए चलायें।
5. एल्यूमीनियम के आइसक्रीम के सांचों में डालकर फ्रीजर में जमायें।

शुष्क क्षेत्र में सौर ऊर्जा से चलने वाले उपयोगी यन्त्र

दिलीप जैन एवं सुरेन्द्र पूनियाँ
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

सर्व विदित है कि ईंधन आधारित ऊर्जा की तेजी से कमी को देखते हुए, सौर ऊर्जा दुनिया के भविष्य की ऊर्जा सुरक्षा के लिए सबसे बेहतरीन विकल्प है। वर्तमान में, दुनिया के वैश्विक बिजली उत्पादन के लिए अक्षय ऊर्जा की हिस्सेदारी 22.8 प्रतिशत है, जो ज्यादातर पानी व बिजली के योगदान से किया जाता है। भारत का कुल पवन ऊर्जा स्थापना में विश्व में पाँचवा स्थान है। वर्तमान में भारत में ऊर्जा उत्पादन का 13 प्रतिशत पवन, सौर तथा बायोमास जैसे श्रोतों के माध्यम से पूरा किया जाता है। जबकि कोयला 60 प्रतिशत योगदान के साथ अभी भी ऊर्जा उत्पादन का मुख्य स्रोत है। वर्तमान में राजस्थान एवं गुजरात सौर ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में अग्रणी राज्य हैं एवं कुल सौर ऊर्जा का लगभग 58 प्रतिशत इन राज्यों से उत्पादित की जाती है। केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय सौर मिशन के तहत वर्ष 2021–22 तक 1,00,000 मेगावाट (100 गीगावाट) सौर ऊर्जा पैदा करने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा है। इसी तरह राजस्थान रिन्यूएबल एनर्जी कॉर्पोरेशन लिमिटेड ने वर्ष 2022 तक राजस्थान में 25,000 मेगावाट के सौर ऊर्जा प्लांट लगाए जाने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

थार मरूस्थल देश का एक ऐसा क्षेत्र है जहां सबसे ज्यादा सौर ऊर्जा उपलब्ध रहती है और सबसे ज्यादा समय तक सूर्य प्रकाश उपलब्ध रहता है। शुष्क क्षेत्र में सौर ऊर्जा की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता को देखते हुए इसका अधिक से अधिक दोहन हो सकता है। इस कभी खत्म न होने वाली सौर ऊर्जा का उपयोग करने के लिए काजरी ने पिछले तीन दशक से विभिन्न प्रकार के खेती और उद्योग में काम आने वाले सौर यन्त्रों के विकास हेतु शोध कार्य किया जा रहा है। सौर ऊर्जा को खाना पकाने, कृषि उत्पादों को सुखाने, पानी गर्म करने, पशु आहार पकाने, आसुतजल उत्पादन, मोम पिघलाने आदि के उपयोग में लिया जा सकता है। इसके अलावा पौधों में दवाई छिड़कने के लिए सोलर स्प्रेयर और सोलर डस्टर भी बनाए गए। वर्तमान में काजरी में सौर खेती की परियोजना पर कार्य चल रहा है, जिसके द्वारा एक ही भूमि इकाई से फसल और बिजली, दोनों का उत्पादन किया जा सकता है।

पशु आहार सौर चूल्हा

गाँवों में पशु आहार (बांटा) पकाने के लिये बड़े पैमाने पर लकड़ी व गोबर को जलाया जाता है। बाजार में उपलब्ध सौर चूल्हा दिन में दो बार खाना बनाने में सक्षम है। इसलिए इसकी कीमत भी बहुत अधिक है। चूँकि पशुओं के लिए एक बार ही आहार (बांटा) को पकाना होता है इसलिए यह सस्ता पड़ता

है। पशुओं के खाद्य पदार्थ (बांटा) पकाने हेतु एक बड़े आकार का सौर कुकर विकसित किया गया। कुकर में स्थानीय रूप से उपलब्ध सस्ती सामग्री जैसे चिकनी मिट्टी, गोबर, बाजरा या गेहूँ का भूसा प्रयोग में आता है। व्यावसायिक सामग्री जो इसके निमार्ण हेतु आवश्यक है वह है सादा कांच, लकड़ी,माइल्ड स्टील एंगल और सीट, एल्यूमिनियम सीव पकाने के बर्तन आदि। इसके लिए जमीन पर गड्ढा खोदते है। चार एल्यूमिनियम के बर्तनों को काले किए गए ढक्कन से ढक देते हैं। पशु आहार को पानी में मिलाकर बर्तन में रख देते है। पशु आहार चूल्हे के विभिन्न अवयवों के माप निम्नवत दिये गये हैं। इसके द्वारा 5 पशुओं हेतु बाँटा (खाने की सामग्री) 10 किग्रा तक दिन के 3 बजे तैयार हो जाता है तथा इसकी प्रभावकारिता 21.8 प्रतिशत है। यही समय पशु आहार (बांटा) का होता है एवं प्रतिवर्ष लगभग 1000 कि.ग्रा. ईंधन की लकड़ी की बचत करता है। इसकी कीमत परार्वर्तक के साथ लगभग 12,500 रु. है।

पशु आहार सौर चूल्हा

2. उन्नत सौर शुष्कक

थार रेगिस्तान फल व सब्जियाँ सुखाने के लिये बहुत ही उपयुक्त क्षेत्र है। सूर्य के प्रकाश से खुले मैदान में फलों व सब्जियों को सुखाने की विधि दीर्घकाल से प्रचलित है। इस विधि से फल व सब्जियों को सुखाने पर उपज में धूल गिरती है, कीड़े लग जाते हैं तथा उत्पाद का वर्षा से नष्ट होने का डर रहता है। सूखी हुई पत्तेदार सब्जियाँ तेज हवा में उड़ जाती है। इस समस्या का हल करने के लिए काजरी में सौर शुष्कक का विकास किया गया है। इस क्रम में धनिया, हरी मिर्च, पालक, भिण्डी, टमाटर, मेथी, प्याज, गाजर, फूलगोभी, पत्ता गोभी, बथुआ, लौकी, शकरकन्द, इमली इत्यादि सुखाने के सफल प्रयोग किये गये है। इसमें 80 किग्रा सब्जी चार दिनों में सूख जाती है। इसमें सूखे हुए पदार्थो में कुछ ''इन्सटेन्ट प्रोडक्ट'' भी बनाये गये हैं जैसे धनिया की चटनी, टमाटर चटनी इत्यादि। काजरी में एक घरेलू सौर शुष्कक भी

बनाया गया है जिसमें सभी प्रकार की सब्जियों को सुखाया जा सकता हैं सूखी हुई फल व सब्जियों के व्यवसायीकरण को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक पद्धति से जोड़कर आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

निर्माण एवं उपयोग

शुष्क क्षेत्रों में अधिकतम सौर विकिरण एवं न्यूनतम आपेक्षिक आर्द्रता के कारण प्राकृतिक संवहन प्रकार का सौर शुष्कक काफी उपयोगी पाया गया है। विद्युत चालित शुष्कक काफी महंगा एवं बिजली की उपलब्धता पर निर्भर होने के कारण कम उपयोग में आता है। इसलिए इनक्लोड सौर शुष्कक का विकास किया ताकि पूरे वर्ष भर अधिकतम सौर विकिरण प्राप्त की जा सके। बाजरे के तने संग्राहक की पेंदी में बिछा देते है ताकि उष्मा का कम से कम ह्यास हो।

''काजरी'' द्वारा एक ऐसे सौर शुष्कक का निर्माण किया गया है जिसमें दस इकाईयां एक क्रम में लगाकर 40 किग्रा पत्तों वाली (पालक, धनियाँ, मेथी, पुदीना एवं बथुआ) एवं 80 किग्रा अन्य सब्जियाँ (भिण्डी, गोभी, ग्वारफली, प्याज, लहसुन, हरी व लाल मिर्च, मटर, चुकन्दर, टमाटर, अरबी, हल्दी, मूली, गाजर, इमली, काचरा, इत्यादि) तथा बेर, खजूर, अंगूर, इत्यादि फल सुखा सकते है। इनको सौर शुष्क द्वारा 2 से 4 दिनों में सुखाया जा सकता है। हरी सब्ज्यों का रंग हरा ही रहता है। सूखी सब्जियों को गर्म पानी में भिगाने से उनका आकार वापस ताजी सब्जी के बराबर हो जाता है तथा बाद में सब्जी बना सकते हैं। टमाटर, मिर्च एवं धनिया का पाउडर बना सकते हैं। जो इन्स्टेन्ट चटनी बनाने के काम आता है। शुष्कक के निर्माण में एल्युमिनियम सा सफेद लोहे की चद्दर, लोहे की एंगल, जंग रहित स्टील की जाली, बाजरा के तने एवं काँच, इत्यादि काम में लेते हैं।

कार्य निष्पादन एवं मूल्यांकन

सौर शुष्क के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन किया गया। बिना सब्जी डाले अधिकतम तापमान लगभग 82 सेल्सियस पाया। सब्जी डालने पर अधिकतम तापमान 60–65 सेल्सियस के मध्य रहा। यह तापमान सुखाने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। ट्रे के ऊपर काले रंग की पेन्ट की गई जी.आई. शीट रखकर सूखे उत्पाद का रंग एवं गन्ध बरकरार रख सकते हैं। किसानों के पास जब सब्जियों की मात्रा व उत्पादन अधिक हो तो उसे सुखाकर बाद में अधिक कीमत पर बेच सकते हैं। सूखी हुई फल व सब्जियों के व्यवसायीकरण को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक पद्धति से जोड़कर आमदनी प्राप्त की जा सकती है। इन सूखी सब्जियों को गृहणियाँ घरों में रख सकती हैं व जरूरत पड़ने पर विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ बना सकती हैं तथा विभिन्न प्रकार की इन्सटेन्ट चटनियां व इन्सटेन्ट सूप भी तैयार कर सकती हैं जिससे श्रम व समय की बचत हो सकती है। अतः यह सौर शुष्कक गृहणियों के लिए वरदान है। एक सौर शुष्कक, जिसकी क्षमता 10 कि.ग्रा. है, की कीमत करीब रुपये 13500 है। इस तरह पूरी इकाई, जिसमें 10 सौर शुष्कक लगे होते हैं, की कीमत रुपये 113500 है।

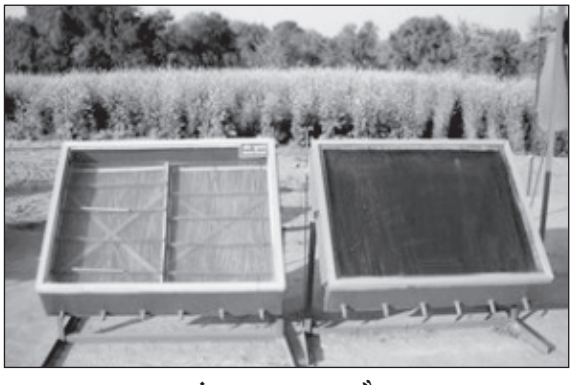

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष उन्नत सौर शुष्कक

उन्नत सौर शुष्कक

3. सौर ऊर्जा चलित छिडकाव तथा बुरकाव यन्त्र (सौर पीवी डस्टर/स्प्रेयर)

शुष्क खेती में पौधों को नाशीकीटों से बचाने के लिये कीटनाशक दवाओं के छिडकाव हेतु एक सौर छिडकाव यन्त्र व एक सौर भुरकाव यन्त्र बनाया गया है। इन दोनों उपकरणों मे सौर बैटरी के पैनल को सिर के उपर क्षैतिज अवस्था में रखने का प्रावधान है, जिससे काम करने वाले के सिर पर छाया भी हो जाती है और सौर उर्जा बिजली में परिवर्तित हो जाती है। सोलर स्प्रेयर में उत्पन्न बिजली से एक विद्युत मोटर चलायी जाती है, जो द्रव की बून्दों को फुहारों मे बदल देती है। ये बून्दें पेड़ों की पत्तियों के नीचे व ऊपर पहुंच जाती है। इस संयन्त्र में उत्पन्न बिजली को बैटरी में भी संचित कर सकते हैं, जिससे इसको सुबह, देर शाम व बादल छाये रहने पर भी काम में ले सकते है। खेतों में कीटनाशक पाउडर छिडकने के लिये बनाये गये अनूठे सोलर डस्टर मे सोलर सेल से उत्पन्न बिजली एक विशेष प्रकार के पंखे को तीव्र गति से चलाती है, जिससे पाउडर हवा के साथ स्वतः तेजी से बाहर निकल फसल पर फैलता रहता है। यह एक द्विउद्देशीय पर्यावरण हितैषी सुविधाजनक उपकरण है एवं इस सौर पीवी डस्टर के विभिन्न अवयवों के माप निम्नवत हैः क्षमता 0.7 हेक्टेयर/घंटा, वजन 6.5 कि.ग्रा. तथा उत्पादन लागत प्रति इकाईः 5000/—रु. है।

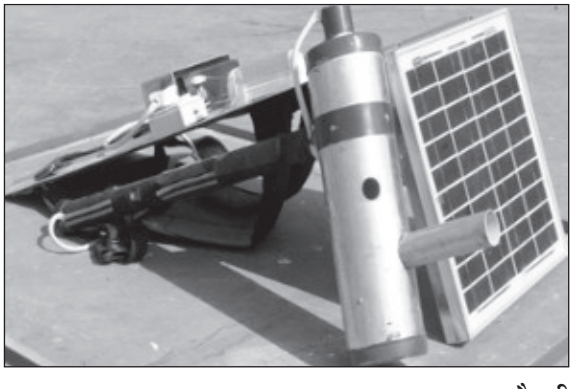

सौर पीवी डस्टर

4. सौर मोमबत्ती मशीन

हमारे देश में आज भी परम्परागत ईंधन यथा जलाऊ लकड़ी, कोयला, केरोसीन तेल, विद्युत या गैसीय ताप से पैराफिन मोम को पिघला कर मोमबत्ती बनाई जाती है। जलाऊ लकड़ी, कोयला या केरोसीन तेल से तापीय ऊर्जा उत्पन्न करने पर धुंए से पर्यावरण प्रदूषण होता है जबकि विद्युत या गैस की उपलब्धता कठिन होते हुए भी अत्यधिक खर्चीली पड़ती हैं खुले बर्तन में तापीय ऊर्जा द्वारा पिघलाए जाने पर मोम गैस बन कर हवा में विलीन होता रहता है। फलतः मोम की मात्रा शनैः शनैः घटती रहती है। वाष्पीकरण में बनने वाली यह मोम की गैस प्रत्येक प्राणी स्वास्थ्य के लिए घातक भी होती है। ईंधन की बचत के उद्देश्य से काजरी, जोधपुर ने सौर ऊर्जा से मोम पिघलाने वाले संयंत्र का आविष्कार किया, जिससे ईंधन, समय एवं श्रम की बचत संभव हुई।

सौर संयंत्र से मोमबत्ती का वाणिज्यिक उत्पादन सरल है। कोई भी साधारण व्यक्ति या किसान कुटीर या लघु–उद्योग योजनान्तर्गत कुछ दिनों का साधारण प्रशिक्षण प्राप्त कर मोमबत्ती का निर्माण कर सकता है। सूर्य से ताप ग्रहण करने वाले इस संयंत्र में प्रातः, दोपहर, शाम या रात्रि में किसी भी समय ठोस मोम के टुकडे भरे जा सकते है। यह ठोस मोम लगातार लम्बी पट्टी के आकार में बाजार से खरीदा जा सकता है। सांयकाल में मोमबत्ती बनाना तथा संयंत्र में मोम के टुकड़े भरना अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। संयंत्र में भरे हुए ठोस मोम के टुकड़े दिन मे ंसौर ऊर्जा से पिघल जाते हैं। मोम पिघलते समय किसी भी प्रकार की देख–रेख की आवश्यकता नहीं होती है। दिनभर में पिघले हुए मोम को मोमबत्ती बनाने के सांचों में उड़ेलकर ठण्डे पानी के बर्तन में रख दिया जाता है। उधर संयंत्र में यथा शीघ्र ही ठोस मोम के टुकड़े पुनः भर दिए जाने चाहिए ताकि तरलीकरण की यह प्रक्रिया पुनः चालू हो सके। शाम हो जाने, दिन में अचानक

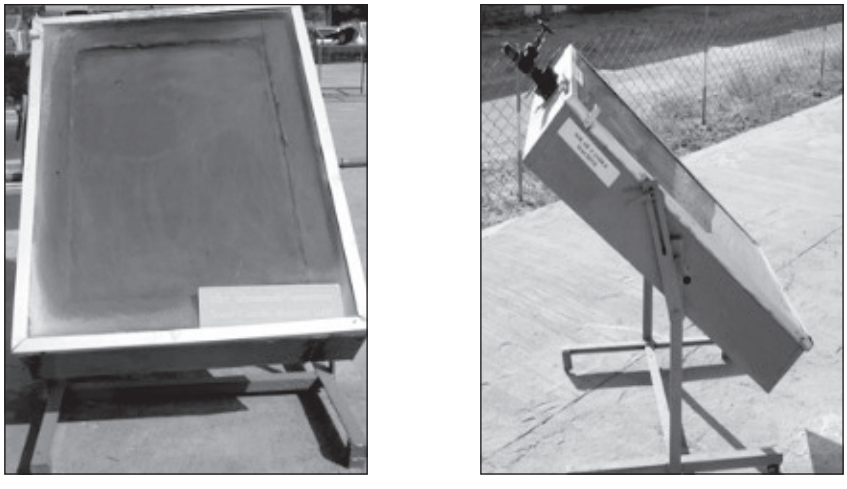

सौर मोमबत्ती बनाने की मशीन

बादल छा जाने या वर्षा आ जाने पर भी पिघला हुआ मोम बहुत समय तक द्रवित अवस्था में ही रहता है। अतः अन्य अत्यावश्यक कार्य को निपटाने के तुरन्त बाद भी मामेबत्ती आसानी से बनाई जा सकती है। सौर मोमबत्ती मशीन (क्षेत्रफल 0.50 वर्ग मीटर) तथा कुल आयाम (1067520 सेमी) में लगभग 18 किलोग्राम ठोस मोम के टुकड़े एक बार में एक साथ भरे जा सकते है। तेज धूप वाले गर्मियों के दिनो में औसतन 10–16 किलोग्राम तथा सर्दियों में 6–9 किलोग्राम मोम को पिघलाकर मोमबत्ती बनाई जा सकती है। इस मशीन की मोम पिघालने की क्षमता तापमान, धूप की अवधि, मौसम तथा टंकी में भरी गई ठोस मोम की मात्रा पर निर्भर करती है। मशीन को ठोस मोम के टुकड़ो से पूरा भर दिया जाना सदैव उपयोगी रहता है इससे मशीन का सम्पूर्ण सौर अवशोषक क्षेत्र क्रियाशील हो जाता है। इस मशीन का उपयोग करने से मुख्य लाभ यह है कि पिघलते समय मोम का वाष्पीकरण नहीं होता और इस कार्य में देखरेख के लिए व्यक्ति का पास में खड़े रहने की जरूरत नही पड़ती है। वाष्पीकरण द्वारा 25–30 प्रतिशत तक होने वाले मोम के नुकसान से भी बचा जा सकता है। सौर मोमबत्ती बनाने की मशीन किसानों, बेरोजगारों, गाँव की महिलाओं तथा विकलांगो के लिए रोजगार उपलब्ध करवाने वाली मशीन है। इसकी कीमत 12000 रूपये (9000 रूपये मशीन के + 3000 रूपये मोमबत्ती बनाने के साँचे तथा अन्य सामग्री के) है। इससे एक व्यक्ति 1000 – 1500 रूपये प्रति महीने अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकता है। वाणिज्यिक उत्पादन हेतु सौर संयंत्रों की संख्या, घनाकार टंकी के आकार आदि में वृद्धि की जा सकती है। एक संयंत्र से मोमबत्ती निर्माणादि में प्रायः 2–3 घण्टे लग सकते हैं। मोमबत्ती की खपतवाले क्षेत्रों के निवासी प्राकृतिक एवं अमूल्य सौर ऊर्जा के उपयोग से इन संयंत्रों एवं सांचों आदि की संख्या एक आकार में वृद्धि कर अधिक आमदानी प्राप्त करके स्वरोजगार योजनान्तर्गत राष्ट्र की समृद्धि में अपना योगदान दे सकते हैं।

5. सौर अलवणीकरण युक्ति

सौर अलवणीकरण की युक्ति अन्य उपलब्ध पारम्परिक विधियों से श्रेष्ठ है। सौर अलवणीकरण इकाई से प्राप्त आसुत जल को लवणयुक्त जल के साथ उचित अनुपात में मिलाने पर पेयजल प्राप्त होता है। लगभग 20 लीटर पेयजल (1500 पीपीएम, कुल घुलनशील लवण) प्रतिदिन उपलब्ध कराया जा सकता है यदि हम (3000 पीपीएम) पानी की 10 लीटर मात्रा को 10 लीटर आसुत जल के साथ मिलाये। सौर अलवणीकरण इकाई बहुत पहले से प्रयुक्त होती रही है। आसुत जल सौर स्टील से बनाया जाता है। आसुत जल की ऐतिहासिक समीक्षा से पता चलता है कि बेसिन टाइप सौर स्टील निर्माण की उन्नत अवस्था में है।

''काजरी'' द्वारा निर्मित मल्टी बेसिन टिल्टेड टाइप सौर स्टील का निश्पादन अत्यन्त उच्च कोटि का पाया गया। इस स्टील के साथ सबसे बड़ी समस्या थी जंग का लगना। इस समस्या को दूर करने के लिए विभिन्न सौर अलवणीकरण युक्तियों का निर्माण किया गया। पांच प्रकार की युक्तियों में मुख्यतः सीमेन्ट कांक्रीट, सीमेन्ट मोनो ब्लॉक, वर्मिक्यूलाइट सीमेन्ट, ईंट एवं पत्थर निर्मित प्लास्टर की गई

निर्माण सामग्री निर्मित सौर अलवणीकरण युक्तियाँ

इकाइयाँ। प्रत्येक इकाई का अवशोषक क्षेत्रफल लगभग 4.2 वर्ग मीटर रखा गया। निचले हिस्से को काले रंग से पेन्ट करते है। लम्बाई वाले हिस्से को दक्षिण मुखी रखा जाता है ताकि अधिकतम सौर विकिरण प्राप्त हो सके। 3.5 मि.मी. की मोटाई का विन्डोग्लास क्षैतिज धरातल से 20° डिग्री पर फिट करते है। आसुत जल के लिए दो चैनल का निर्माण करते हैं और आसुत जल को जरीकैन में एकत्र करते है। सौर अलवणीकरण इकाई शुष्क क्षेत्र में ग्रामीण इलाको के लिए बहुत उपयोगी है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ पेयजल उपलब्ध नहीं हैं किन्तु लवणयुक्त जल उपलब्ध है।

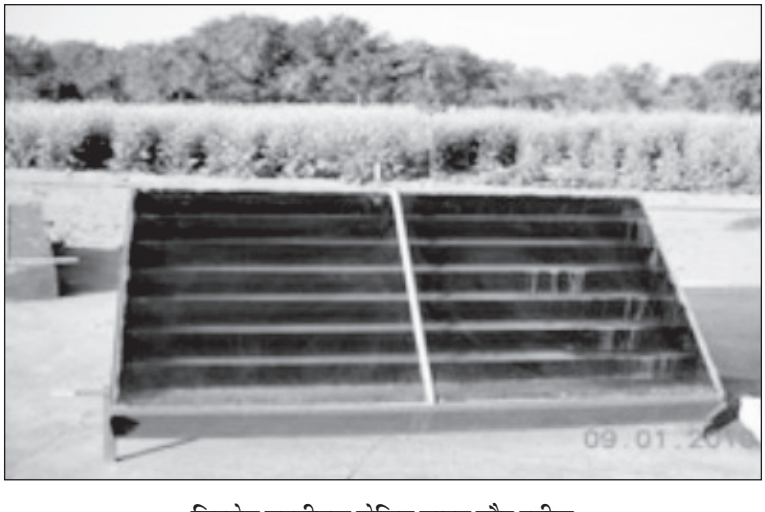

टिल्टेड मल्टीपल बेसिन टाइप सौर स्टील

इस युक्ति से 8–10 लीटर आसुतजल प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है। पेयजल की समस्या इस इकाई का प्रयोग कर काफी हद तक सुलझाई जा सकती है। आसुतजल को लवणयुक्त जल के साथ उसी अनुपात में मिलाने पर पेयजल प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ (3000 पीपीएम), कुल घुलनशील लवण की मात्रा उपलब्ध है वहाँ 20 लीटर पेयजल प्रतिदिन (1500 पीपीएम) प्राप्त किया जा सकता है। इस इकाई के उपयोग से पारम्परिक ईंधन की बचत की जा सकती है। लकड़ी की बचत से पर्यावरण की रक्षा एवं गोबर की बचत से रासायनिक खाद की बचत की जा सकती है जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि संभव है। इसके अतिरिक्त CO_2 उत्सर्जन में कमी भी प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त इस युक्ति से प्राप्त आसुतजल का उपयोग प्रयोगशालाओं एवं बैटरी में भी किया जाता है।

6. शीतल कक्ष

मरू वातावरण में वायुमण्डल का तापमान सामान्य से अधिक होता है। उससे फल–फूल सब्जियों से नमी कम होती जाती है। परिणाम स्वरूप उनके उपभोग का समय भी कम हो जाता है। अतः सब्जियाँ जल्दी से खराब हो जाती हैं। यदि इन भोज्य पदार्थो को शीतल यंत्रों द्वारा ठण्डा रखने के लिए विधुत एवं अन्य ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। ये यंत्र मंहगें और रख–रखाव की आवश्कता रखने वाले होते हैं। गाँवों में उनकी उपलब्धता भी नगण्य सी होती है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए एक वाष्पीकृत शीतल कक्ष का निर्माण किया गया है। यह शीतल कक्ष तापीय ईंटों एवं सीमेन्ट से निर्मित है। यह दो दोहरी ईंटों की दीवारों से बना कक्ष है। इन दो दीवारों के बीच की जगह में मोटी कणों वाली मिट्टी एवं जल भरा जाता है। इस कक्ष के ऊपर एक जालीदार ढक्कन लगाया जाता है। इस शीतल कक्ष में गर्मियों में 12.14° सेन्टीग्रेड तक जबकि सर्दियों में 6.8° सेन्टीग्रेट तक तापमान कम किया जा सकता है तथा आपेक्षित आद्रता

शीतल कक्ष

90 प्रतिशत तक रहती है। इस वातावरण में फल–फूल सब्जियों को बिना वजन घटे एवं रंग रूप सहित साफ व स्वच्छता से रखा जा सकता है। इस शीतल कक्ष की कुल कीमत मात्र 6000/– रूपये आती है।

इस शीतल कक्ष की मुख्य विशेषताऐं :-

1. यह फल–फूल सब्जी की उपयोग उम्र बढ़ाती है।
2. शीतल कक्ष बनाने की संरचना सरल है। इसे ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध सामानों से बनाया जा सकता है।
3. इसका रख–रखाव खर्च नगण्य है।
4. यह पर्यावरण के अनुकूल है।
5. इससे फल–सब्जी की अच्छी कीमत प्राप्त की जा सकती है।

सारांश

राजस्थान के थार मरूस्थल में पशु आहार उबालने, कृषि उत्पादों को सुखाने एवं पौधों में दवाई छिड़कने के लिए बिजली से चलने वाले उपकरण काम में लिए जाते है लेकिन कई गांवों में बिजली नहीं है और अगर कही उपलब्ध है तो वह काफी महंगी पडती है जो कि एक साधारण किसान की आर्थिक क्षमता के बाहर है लेकिन यहां शुष्क क्षेत्र में सौर ऊर्जा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जिसका उपयोग पशु आहार उबालने एवं फल व सब्जियों को सुखाने के लिए किया जा सकता है।

फसलों में सूत्रकृमि समस्या एवं प्रबन्धन

आर.के. कौल, ए.एस. तोमर एवं एस.के. शर्मा
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

सूत्रकृमि (निमेटोड) बहुत छोटे तथा केंचुए की तरह दिखाई देने वाले जीव होते हैं। कीटों की तरह सूत्रकृमि न तो पंख होते हैं और न ही टांगे होती हैं। छोटे आकार के होने के कारण सूत्रकृमि प्रायः आंखों से दिखाई नहीं देते है तथा इनकी अधिकतर प्रजातियों को सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही देखा जा सकता है। मनुष्यों, पशुओं से लेकर पेड़–पौधों में लगने वाले सूत्रकृमियों के मुँह में सूई के आकार की नली (सटाईलेट) पायी जाती है। सूत्रकृमि इस सटाईलेट के द्वारा पौधों के विभिन्न भागों से अपना पोषण प्राप्त करते है। ये अक्सर मिट्टी में पाये जाते हैं। सूत्रकृमि अक्सर नमी युक्त जगहों पर पाये जाते हैं। इसलिये इनका प्रकोप सिंचित फसलों पर अधिक होता है। सूत्रकृमि की एक प्रजाति पौधों की जड़ों में गाँठें बनाती हैं। इस प्रकार के कृमियों को जड़ गाँठ निमेटोड तथा इनसे होने वाले रोग को 'जड गाँठ रोग' कहा जाता है।

सूत्रकृमि से फसलों को नुकसान

सूत्रकृमि अपने मुँह में पायी जानी वाली नली (सटाईलेट) की सहायता से पौधे की जड़ों में छेद करके प्रवेश करता है। यह कृमि जड़ के जिस भाग में अपना पोषण करता है उसी भाग को गाँठ में परिवर्तित कर देता है। इन्हीं गाँठों में रहकर यह सूत्रकृमि अपना जीवन चक्र पूरा करता है। कृमि से प्रभावित पौधों की जड़ों से पौधों के ऊपरी भाग में जल एवं पोषक तत्वों के संचार में बाधा आती है जिसके कारण पौधा ठीक से पनप नहीं पाता है। कृमि के प्रकोप से पैदावार में कमी आती है तथा फसल की गुणवत्ता पर भी विपरीत असर पड़ता है।

सूत्रकृमि से प्रभावित पौधों की पहचान

जड़ गाँठ रोग से प्रभावित पौधे ठीक से पनप नहीं पाते हैं। ऐसे पौधों की पत्तियों में पीलापन दिखाई देता है तथा पौधों की पत्तियाँ एवं फल छोटे रहते हैं। जिन खेतों में जड़ गाँठ रोग का अधिक प्रकोप होता है, वहाँ मिट्टी में पर्याप्त नमी के होते हुए भी पौधे मुरझाये हुये दिखाई देते हैं। ऐसे पौधों को उखाड़ कर देखने पर इनकी जड़ों में गाँठे दिखाई देती हैं पश्चिमी राजस्थान में इसका प्रकोप प्रायः सब्जियों, मिर्च, जीरा, अनार तथा पपीते की फसलों में देखा गया है।

समन्वित सूत्रकृमि प्रबन्धन

- फसल की नर्सरी पौधशाला ऐसे स्थान पर तैयार करें जहाँ पर जड़ गांठ सूत्रकृमि का प्रकोप कम या नहीं हो।
- सूत्रकृमि से प्रभावित क्षेत्रों में नर्सरी तैयार करते समय कार्बोफ्यूरॉन 3 जी नामक कीटनाशक की 6 से 9 ग्राम मात्रा प्रति वर्गमीटर के हिसाब से मिट्टी में अवश्य मिलायें।
- सूत्रकृमि से प्रभावित खेतों में यदि सम्भव हो तो गर्मी के महीनों में 10 से 15 दिन के अन्तराल पर 2 से 3 बार जुताई करें। ऐसा करने से सूत्रकृमि मिट्टी की सतह पर आयेंगे और सूर्य के ताप से झुलस जायेंगे गर्मी में झुलस जायेगा तथा इसकी संख्या में काफी कमी हो जायेगी।
- जिन फसलों की खेत में सीधी बुवाई की जाती हो तो उनके बीजों को कार्बोसल्फॉन 25 डी.एस. की 100 से 120 ग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से बीजोपचार अवश्य करें।
- जिस समय खेत में कोई फसल नहीं हो तो ऐसे समय पर खेत में किसी भी प्रकार के खरपतवारों एवं अन्य पौधों को पनपने नहीं दें।
- फसल के बीच–बीच में गैंदा/हजारे के पौधे लगायें।
- यदि सम्पूर्ण खेत इस कृमि से प्रभावित हो तथा मिट्टी का उपचार कीटनाशक द्वारा जरूरी हो तो ऐसे खेत की मिट्टी में कार्बोफ्यूरॉन 3 जी नामक कीटनाशक की 33 किलोग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर एवं नीम या सरसों की खली की 400 किलोग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से मिलायें।

इनके अतिरिक्त फसल में सूत्रकृमि का नियंत्रण करने के लिये फसल चक्र अपनाना चाहिये तथा 2 से 3 वर्ष के अन्तराल पर सरसों, प्याज, लहसुन तथा गेहूँ की फसलें लेनी चाहिए। फसल को खरपतवार रहित रखें। यदि उपलब्ध हों तो सूत्रकृमि की प्रतिरोधी किस्मों की ही बुवाई करें।

निकरा परियोजना के तहत विभिन्न गतिविधियों का चित्रण

प्रशिक्षण

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

प्रदर्शन

प्रदर्शन

कृषि यंत्र सेवा केन्द्र

प्रसार गतिविधियां

पशुधन प्रबन्धन

किसानों को सरसों उत्पादन के नई तकनीक की जान

कृषि विज्ञान केंद्र काजरी की अ
में सरसों उत्पादन की उन्नत त
गया। केंद्र के अध्यक्ष डॉ. एस
गिरिराज एनआरसीडीआर.2 व
दी। प्रदर्शनी कृषि विज्ञान केंद्र
मेघवाल तथा भंवर सिंह सहि
डॉ. हरिदयाल ने किसानों क
डॉ.आरपी सिंह ने नाइजीरि
गोंद उत्पादन कर किसानों क
में प्रगतिशील कृषक उप सरपंच घेवरराम, बगताराम एवं
किसानों के लाभदायक जानकारी बताया। कार्यक्रम को सफल बन
मनीष चौधरी एवं विकास कुमार सैन का योगदान रहा।

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव से कम हो रही फसलों की पैदावार : डॉ. यादव

काजरी में दो दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम संपन्न

धरती पुत्र किसान ही हैं देश के अन्नदाता सबसे पहले हो इनका सम्मान : शेखावत

जीरा उत्पादन पर क्षेत्र दिवस मनाया

दैनिक नवज्योति

सिटी प्लस

खेती को लाभ का सौदा बनाना होगा : शेखावत

किसान अन्नदाता, उनका सम्मान जरूरी

पुस्तक लोकार्पण व बीज का वितरण

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

भाकृअनुप
ICAR

NICRA

कृषि विज्ञान केन्द्र

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

जोधपुर (राजस्थान)

CENTRAL ARID ZONE RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR